तू किरण नहीं, सूरज है

(मोक्ष मार्ग–में उपयोगी एक शतक कहानियों का संग्रह)

लेखक व संकलनकर्ता : बाबू लाल जैन

Scanned by CamScanner

प्रकाशक एवं पुस्तक प्राप्ति स्थान
गोदावरी देवी जैन चैरिटेबल ट्रस्ट
एम० पी० जैन चैरिटेबल ट्रस्ट
बी–137, विवेक विहार, दिल्ली–95
फोन : 65351637, 22156629, 9312221796

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

तू किरण नहीं, सूर्य है ! 2
कर्मकृत नाटक 5
निर्मोही नगरी 7
ज्ञान का मालिक ! 10
कहीं दूसरे का अहम पुष्ट न हो जावे 11
जो था वह दे दिया 12
खाते का मिलान तिजोरी से 13
एक देखिए इक जानिए रमे रहिये इक ठौर 14
स्व-पर का भेद ज्ञान 15
कुँए में बाल्टी ! 16
एक सुई भी अगले जन्म में नहीं ले जा सकता! 17
अज्ञानता के विकल्प 18
आगम ज्ञान और आत्म ज्ञान 19
दबाई हुई कषाय 20
जहाँ मैं हूँ वही तुम हो 21
भगवान भीतर है 22
कर्म की अमानत 23
कर्म के मध्य में भी चेतना का स्वाद 24
आत्मा अपनी अज्ञानता से बँधा है ! 25
आत्मा का रोग राग-द्वेष 26
कोई किसी का नहीं 28
संसार वृक्ष ! 29
मरण निश्चित है ! 30
कमाल का कमाल 31
हमारा अहम 32
अपना सो अपना, पराया सो पराया 33
हमारा दृष्टि दोष 34
तुम क्या हो ? 35
असली नकली की पहचान 36
मैं अपना स्वभाव क्यों छोड़ूँ ? 37
"मैं" को खाना ! 38
राग-द्वेषरूपी चक्की 39
सभी अपनी आग में जलते हैं 40
शरीर को मरते देख ! 41
जिसको आँख मिल गयी उसे रास्ता दिख गया 43
मेरा तो पीछे कुछ नहीं रहा ! 44
जहाँ खोया है वहीं खोज ! 45
अपनी मृत्यु हर समय देखें 46
मिट्टी पर मिट्टी क्यों डालें ! 47
तालाब में भी मगर प्यासा ! 48
साक्षी भाव ही दवा है ! 49
जहाँ परिग्रह है वहाँ डर ही डर है ! 51
वह तो तू ही है! कहीं खोया नहीं है ! 52
अपने परमात्मा को पहचान ! 53
अपने को गिनना भूल गये ! 55
नाव खूंटे से बंधी है 56
शांतचित्त है द्वार प्रभु का ! 57
अपने में होना साधुता ! 58
निर्मलता की जड़ साक्षी भाव ! 59
सम्यक् देखना ! 60
देना उसके आधीन, लेना हमारे आधीन ! 61
आखिरी बाधा 62
वाद-विवादों में अनुभव नहीं 63
अपना-पराया 64
वह अपने लिये गाता है मैं आपके लिए गाता हूँ 65
यह भी स्वप्न. वह भी स्वप्न 66
घर में बैरागी 67
आत्मस्वभाव मूल है और आचरण उसका प्रतिफल है! 68
दमन ! 69
ज्ञान और राग साथ होने पर भी भिन्न ! 70
अपनी चेतन-शक्ति को मत भूलना ! 72
अपना सहारा ! 73
विद्वान की अज्ञानता 74
तेरा कार्य तेरा-मेरा कार्य मेरा 75
राग और द्वेष की गोलियाँ 76
वस्तुस्थिति को देखने की कला 78
पुण्य और पाप 79
नया संस्कार 80
सामान तो बचा लिया किन्तु मालिक मर गया ! 81
कितने भव अवशिष्ट रहे ? 82
दोनों एक ही नाव के सवार 84
आत्मा सदा उपवासी है 85
त्यागी कौन ? 86
स्वर्ग से नारद 87
अपने को न भूलना 88
दूसरे का नाम मिटाकर अपना लिखा। 89
अपने में देखें 90
छप्पर पर ऊँट 91
धर्म का शिखर या अधर्म का शिखर 92
भगवान की वाणी 93
अहंकार बनाम परोपकार 94
जो पढ़ा हैं उसकी फीस ज्यादा 95
यहाँ दो को जगह नहीं है 96
पेड़ की डाल टूट पड़ी 96
भगवान अकेला 97
भेद ज्ञान 98
प्रेम में बोझा नहीं 99
राहगृह के तीन मित्र 100
उस बोझें को उतार क्यों नही देते ? 101
पुरानी यादगार 102
पगड़ी के दाम 103
मेरी पुरानी यादगार 104
यह उसकी समस्या है 105
श्र)ा की महिमा 106
ज्ञानी कौन ? 107
'मैं' या परमात्मा 108
दयामयी उदारमना-वर्णीजी 109
दुःख कहाँ से आया 110
तत्व ज्ञानी कितने 111
अपने घर में आग लगा ली 112

Scanned by CamScanner

तू किरण नहीं, सूर्य है !

निर्विकल्प, अखण्ड ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। जिस प्रकार मिश्री की डली मधुरता का पिण्ड है, उसी प्रकार आत्मा ज्ञान का पिण्ड है। अथवा जैसे सूर्य प्रकाश का पिण्ड है वैसे ही आत्मा ज्ञान का पिण्ड है। सूर्य कि किरणों की भाँति ही संसारी आत्मा में ज्ञान की जो किरणें प्रकट होती दिख रही हैं, वही सविकल्प, क्षायोपशमिक ज्ञान है। इसके अतिरिक्त जीव में दया, दान, त्याग आदि के भाव (शुभ भाव) और हिंसा, झूठ, चोरी आदि के भाव (अशुभ भाव) भी देखे जाते हैं। इन शुभ-अशुभ भावों को भावकर्म या औदयिक भाव कहते हैं। चूँकि ये कर्म के उदय की अपेक्षा रखते हैं। ये कर्म के फल हैं इनके साथ ही जीव के शरीर का संयोग सम्बन्ध है और धन-वैभव-पद, स्त्री-पुत्रादि के संयोग भी हैं—ये सभी संयोग कर्म के फल हैं।

अपनी अज्ञान अवस्था में यह क्षायोपशमिक ज्ञान उस अखण्ड-अभेद ज्ञान-सूर्य से तो विमुख हो रहा है जिसका कि यह एक अंश, एक किरण मात्र है—वह ज्ञान-सूर्य तो वस्तुतः इस ज्ञान-किरण का स्रोत है। और अपने स्वरूप, अपने उद्गम-स्रोत से विमुख हुआ यह ज्ञानांश (क्षायोपशमिक ज्ञान) दूसरी ओर जीव की चित्त-भूमि में उठने वाले शुभाशुभ संस्कारों/भावकर्मों को अपना स्वरूप जान रहा है, मान रहा है, अनुभव कर रहा है। चूँकि भावकर्म औदयिक भाव और कर्मफल दोनों ही परकृत, अस्थायी, परिवर्तनशील व विनाशीक् हैं, अतः उन-रूप अपने को अनुभव करने से यह ज्ञानांश स्वयं को दुःखी ही पाता है।

इस ज्ञानांश की ऐसी विपरीत परिणति के सही/सम्यक् रूपांतरण हेतु इसे समझाया जाता है कि हे ज्ञानांश ! न तो तू शरीर/कर्मफल-रूप है और न रागादिक/औदयिकभाव-रूप है अपनी सत्ता को कर्म व कर्मफल-रूप अनुभव करने से तो कर्म की वृद्धि ही होगी। तू अपने

Scanned by CamScanner

को ज्ञान-पिण्ड निज (ज्ञायक) स्वभाव-पारिणामिक भाव के सम्मुख करके स्वयं को उसी-रूप अनुभव कर जिससे कर्म का क्रमशः ह्रास होगा और सम्यक् ज्ञान की वृद्धि होगी। इस प्रकार यदि तू अपने निर्विकल्प स्वरूप के अनुभव में ठहर जाएगा तो कर्मों का नाश हो जाएगा तथा ज्ञान की पूर्णता होकर केवलज्ञान रूप परिणमित होगा।

आत्मा के कल्याण के मार्ग की इस रूपरेखा को एक रूपक के माध्यम से इस प्रकार भी समझा जा सकता है:—

पारिणामिक भाव (ज्ञायक-स्वभाव) (ज्ञान-सूर्य)	क्षायोपशमिक भाव (बुद्धि) (ज्ञानांश/ज्ञान-किरण)	औदयिक भाव (भाव कर्म शुभ-अशुभ भाव) (रागादिक तथा उनके अवलम्बन शरारादिक)	
१	६	३	अज्ञान दशा
१	३	३	भेद-विज्ञान
१	३	६	संयम (आत्म-स्वरूप में ठहराव)
१	०	०	कैवल्य/मोक्ष

हमारी वर्तमान में प्रकट जो जाननशक्ति है, वही क्षायोपशमिक ज्ञान '६' है। इस जाननशक्ति को किस ओर लगाना है, किस ओर केन्द्रित करना है, यह हम पर निर्भर है। अभी यह जाननशक्ति—रागादिक अथवा औदयिक भाव '३' के सम्मुख हो रही है और स्वयं को '३' ही समझ रही है। '६' के कल्याण का सम्यक् उपाय अपने उदगम्-स्रोत पारिणामिक भाव '१' के सम्मुख होना है।

हमने शास्त्र अध्ययन आदि के द्वारा '६' को बहुत बढ़ाया, बहुत जानकारियाँ इकट्ठी कीं परन्तु '६' पलट कर '१' के सम्मुख नहीं हुआ—उसने '१' में अपनापन, एकत्व अनुभव नहीं किया। इसी प्रकार क्रिया-काण्ड का पालन करके, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, त्याग-दानादि

Scanned by CamScanner

के द्वारा '३' को भी हमने बहुत बढ़ाया—अशुभ भावों को शुभ भावों-रूप बदलने के लिये ऊँचे दर्जे का आचरण किया परन्तु '६' फिर भी '३' के सम्मुख ही रहा, साथ ही उसने ऊँचे आचरण का अहंकार कर लिया कि मैं ऐसा हूँ, इसी रूप हूँ।

यह सब होने पर भी सम्यक् रूपांतरण नहीं हुआ, मोक्षमार्ग की शुरुआत नही हुई क्योंकि '६' अपने स्वरूप '१' के सम्मुख नहीं हुआ। अज्ञान, अविवेक की यह दशा '१६३' है। यदि '६' अपना मुख घुमाकर '३' से विमुख होकर '१' के सम्मुख हो जाए; ज्ञानांश यदि स्वयं को ज्ञान-स्वभाव-रूप अनुभव कर ले, तो जीव की अज्ञान अवस्था परिवर्तित होकर सम्यक् ज्ञान-अवस्था '१३३' हो जाए; ज्ञानांश '६' का रागादिक (और उनके अवलम्बन शरीरादिक) '३' से विमुख होना और स्व स्वरूप '१' के सम्मुख होना, यही भेद-विज्ञान है।

क्षायोपशमिक ज्ञान '६' का सम्यक् रूपांतरण हुआ तो '६' ने चूँकि '१' की ओर मुख किया, अतः दाई ओर के '३' की ओर उसकी स्वतः पीठ हो गई। सम्यक् ज्ञान (मध्य का '३') जब बारम्बार अपने स्वरूप '१' में लीन होने लगा तो उसकी दाँई तरफ के '३' से बेरूखी बढ़ती चली गई जिसके परिणामस्वरूप दांया '३' भी उससे बेरुख हो गया। नतीजा यह हुआ कि '१३६' की अवस्था बनी। दूसरे शब्दों में जब विवेक/भेद-विज्ञान का प्रकाश बढ़ना शुरू हुआ तो औदयिक भावों का अंधेरा खुद-ब-खुद ही शक्तिहीन होना शुरु हो गया। यही दशा सम्यक्चारित्र की है, यही मोक्षमार्ग है, इसी के बल पर औदयिकभाव-रूपी अंधेरे का आत्यंतिक क्षय होता है और विवेक सम्यग्ज्ञान (मध्य का '३') पूर्णता को प्राप्त होकर अपने स्रोत में समाकर केवल '१' रह जाता है, वही मोक्ष है।

अब अपनी बात यही कारण है कि ११ अंग तक का क्षयोपशम ज्ञान और मुनिपना धारण करने पर भी सम्यक्त्व नहीं होता। जब उपयोग ज्ञान स्वभाव के सन्मुख होकर उसमें एकत्व स्थापित न करे तभी सम्यक्त्व होता है।

Scanned by CamScanner

कर्मकृत नाटक

नाटक में पार्ट करते हुए यदि कोई अभिनेता इतना तन्मय हो जाए कि अपने असली स्वरूप को ही भूल जाए और उस पार्ट या रोल को ही असलियत मान बैठे। तब उस रोल-सम्बन्धी सुख-दुःख का भोग भी उसके शुरू हो जाता है। वह सुख-दुःख कैसे मिटे? इसका सीधा-सरल उपाय यही है कि किसी प्रकार उसे अपने असली स्वरूप की याद आ जाए। तब नाटक का वह रोल अदा करते हुए भी उसे उस रोल सम्बन्धी दुःख-सुख नहीं होगा। यही सही उपाय है। यदि कोई कहे कि उसको गरीब/दीन व्यक्ति के रोल के स्थान पर धनिक/शक्तिशाली का रोल दे दें, तो वह सही उपाय न होगा। क्योंकि यदि उस (अभिनेता) को रोल में अपनापना (एकत्व) आ रहा है, तो उसके दुःख-सुख का निवारण किसी प्रकार नहीं हो सकता। रोल-विषयक दुःख-सुख उसे अवश्य होगा।

यही हालत हम संसारी जीवों की है। यह जीव चौरासी लाख योनियों में कर्मजनित पार्ट या रोल कर रहा है। कभी मनुष्य का रोल करता है तो कभी पशु-पक्षी का, कभी पुरुष का रोल करता है तो कभी स्त्री का, कभी निर्धन का रोल करता है तो कभी धनवान का, कभी निर्बल का रोल करता है तो कभी बलवान का, कभी मूर्ख का रोल करता है तो कभी विद्वान का ये पार्ट करते हुए कभी धन, स्वास्थ्य, बुद्धि, रूप आदि की हानि होती है तो कभी ये संयोग इसे मिल जाते हैं, कभी पुत्र का विवाह होता है तो कभी उसका मरण होता है। इन स्थितियों में यह स्वयं को दुःखी-सुखी मानता हुआ फिर नये रोल्स करने का कारण इकट्ठा कर लेता है। अनन्तकाल से इसकी यही हालत हो रही है और इन विभिन्न रोल्स को करते-करते यह अपने असली स्वरूप को तो भूल गया है और उन रोल को ही इसने असलियत मान लिया है।

Scanned by CamScanner

आज तक हमारा सारा प्रयत्न समस्त पुरुषार्थ इन रोल्स को बदलने की दिशा में ही केन्द्रित रहा है। अपने दुःख दूर करने के लिये हमने सदैव गरीव के रोल को धनिक के रोल में बदलना चाहा या रोगी के रोल को नीरोगी के रोल में; कुरूप के रोल को सुन्दर व्यक्ति के रोल में बदलने का यत्न किया या कमजोर के रोल को ताकतवर के रोल में। किन्तु हाँ ! इन सभी रोल्स से भिन्न अपने असली स्वरूप को, अपने ज्ञायक स्वरूप को जानने का पुरुषार्थ कभी नहीं किया। यदि निज स्वरूप को जान लिया होता तो इनमें से कोई भी पार्ट करते हुए न तो दुःख-सुख होता और न ही नये-नये रोल्स करने का कारण बनता और अन्त में सभी रोल्स से छुटकारा पाकर यह जीव कर्मरहित हो जाता।

सही अर्थ में सुखी होने का उपाय पार्ट अथवा रोल को बदलना नहीं, बल्कि पार्ट करने वाले को जानना है जिसे कि हम आज तक भूले हुए हैं। उसी को जानना सुखी होने का सच्चा उपाय है। फिर ये धनिक गरीब के रोल हमें सुखी दुखी नहीं बना सकेंगे।

★ हे आत्मन् ! तुझे लोक का क्या प्रयोजन है ? आश्रय का क्या प्रयोजन है ? द्रव्य का क्या प्रयोजन है ? शरीर का क्या प्रयोजन है ? वचनों का क्या प्रयोजन है ? इन्द्रियों का क्या प्रयोजन है ? प्राणों का क्या प्रयोजन है ? तथा उन विकल्पों का भी तेरे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् इन सब का तुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं है, क्योंकि वे समस्त पुद्गल की पर्यायें हैं और इसलिये तुझसे भिन्न हैं, तू प्रमाद के वश होकर व्यर्थ ही इन विकल्पों द्वारा किसलिये अतिशय बंधन का आश्रय करता है ?

Scanned by CamScanner

निर्मोही नगरी !

एक बार एक राजकुमार जंगल में रास्ता भूल गया और भटकता हुआ किसी साधु के आश्रम में जा पहुँचा। साधु ने उसका यथोचित सत्कार किया औरं उसका परिचय पूछा। राजकुमार बोला, "मैं निर्मोही नगरी के निर्मोही राजा का ज्येष्ठ पुत्र निर्मोही युवराज हूँ, वन में रास्ता भूलकर आपके आश्रम तक पहुँचा हूँ।" परिचय सुनकर साधु आश्चर्यचकित हुआ कि राजा निर्मोही, युवराज भी निर्मोही और यहाँ तक की सारी नगरी भी निर्मोही। उसकी उत्सुकता इतनी बढ़ी कि इस बात की जाँच करने के लिये राजकुमार को वहीं बैठाकर वह स्वयं उस नगरी में जा पहुँचा। नगरी के प्रवेशद्वार में घुसते ही उसने देखा कि छोटा राजकुमार हाथी पर सवार हुआ आ रहा है। साधु को देखकर राजकुमार नीचे उतरा और उसे नमस्कार किया। साधु ने उससे कहा—"तुम्हारे लिये एक बुरी खबर है, तुम्हारा बड़ा भाई वन में गया था। वहाँ एक शेर ने उसे मार डाला।" राजकुमार बोला, "महाराज ! एक वृक्ष पर दो आम लगे थे; एक गिर गया , दूसरा अभी लगा हुआ है। गिरने वाला आम दूसरे को जता रहा है कि एक दिन तुझे भी गिरना है—वह भी गिरेगा ही। आपने इस तनिक-सी बात के लिये व्यर्थ ही इतना (सूचनार्थ यहाँ आने का) कष्ट उठाया।" साधु ने विचार किया—यह राजपुत्र तो वास्तव में निर्मोही है, तो भी अन्य लोगों की परीक्षा के लिये भी आगे चलना चाहिए !

आगे चलने पर साधु को एक स्त्री दिखाई पड़ी। वह युवराज्ञी की दासी थी और पूजा के लिये फूल लेने जा रही थी। साधु ने उसे भी वही बात कही। दासी ने उत्तर दिया—"महाराज ! जो फूल सबेरे खिला है वह संध्या के समय मुरझायेंगा ही। इसमें आश्चर्य की क्या बात? यह तो निश्चित है।" दासी का जवाब सुनकर साधु को आश्चर्य हुआ और सोचा कि यहाँ की तो दासी भी निर्मोही है !

Scanned by CamScanner

साधु पुनः आगे बढ़ा और युवराज्ञी के महल में जा पहुँचा। उसने साधु को आसन पर बैठाया और आने का प्रयोजन पूछा। साधु बोला—"तुम्हारे लिए अत्यन्त दुःखद समाचार है, तुम विधवा हो गई हो।" युवराज्ञी ने कहा—"महाराज ! हमारा विवाह हुआ तब दो व्यक्तियों का संयोग हुआ था, तभी यह निश्चित था कि दोनों में से एक को तो पहले जाना ही होगा, चाहे पत्नी पहले जाए अथवा पति! जहाँ संयोग होता है वहाँ वियोग भी अवश्य ही होता है, इसमें दुःख की क्या बात?" साधु निरुत्तर हो गया और वहाँ से चलकर राजकुमार की माँ के पास पहुँचा। वहाँ भी उसने युवराज के आकस्मिक मरण की कहानी दोहराई। रानी बोली—"महाराज ! पुत्र को जब मैंने पहली बार गोद में लिया था, आयु तो उसकी तभी से एक-एक क्षण करके कम होने लगी थी, जो अब वह खत्म हो गई। इसमें अनहोनी कैसी? जो उत्पन्न होता है वह अवश्य मरता है, संसार का ऐसा ही नियम है।" साधु चुपचाप वहाँ से निकलकर राजा के दरबार में पहुँचा।

राजा के पास पहुँच कर साधु ने एक बार फिर वही खबर सुनाई। राजा बोला—"महाराज ! आज तक संसार में कोई भी अमर नही हुआ। संयोग के साथ वियोग, जन्म के साथ मरण, उत्पत्ति के साथ विनाश अवश्यम्भावी है; इन्हें न कोई रोक सका है, न रोक सकता है और न ही कभी रोक सकेगा—यह सृष्टि का शाश्वत नियम है।" साधु ने जब इस प्रकार देखा कि वास्तव में यह तो नगरी ही निर्मोही है, जहाँ राजा-प्रजा सभी निर्मोही हैं, तब वह नगरी से वापिस अपने आश्रम को लौट पड़ा। रास्ते में सोचता गया कि बस अब तो युवराज के निर्मोहीपने की थाह लेनी बाकी है !

आश्रम पहुँच कर साधु युवराज से बोला—"मेरे लौटने में देरी हो गई, उधर तुम्हारी नगरी में आग लग गई थी जिसमें तुम्हारे

Scanned by CamScanner

माँ-बाप, पत्नी, भाई सभी जल गये। केवल कुछ लोग बचे हैं, उनकी व्यवस्था करने में देर हो गई।" राजकुमार ने उत्तर दिया—"महाराज ! किसका बाप, किसकी माँ, किसकी पत्नी और किसका भाई? ये सब इस शरीर के साथ यहीं रह जायेंगे।"

ऐसी है भेद-ज्ञान की महिमा ! यदि यह जीव शरीर व आत्मा को अलग-अलग समझ कर स्वयं को शरीर से भिन्न चैतन्य-रूप देखे, अनुभव करे तो दुःख-सुख होने का प्रश्न ही न उठे। शरीर और आत्मा कभी एक नहीं होते। आत्मा का स्वभाव भिन्न है, शरीर का स्वभाव भिन्न। चीनी को यदि पानी में मिलादे तो भी चीनी अपने मीठेपने को और पानी अपने गीलेपन को नहीं छोड़ता है। एक विशेष प्रक्रिया से दोनों पुनः अलग-अलग किये जा सकते है। इसी प्रकार आत्मा और शरीर का संयोग है; दोनों न कभी एक हुए हैं और न कभी एक हो सकते हैं। परन्तु यह जीव अपनी अज्ञानता से—निज स्वरूप से बेखबर स्वयं को शरीर-रूप ही देखता-जानता है, शरीर के नाश में अपना नाश और शरीर की उत्पत्ति में अपनी उत्पत्ति मानता है। निज की यह अज्ञानता ही इस जीव के बारम्बार जन्म धारण करने में कारण है।

★ मोहांध जीवों के हृदय में बाह्य स्त्री, पुत्र, शरीर आदि पदार्थ निजरूप भासित होते हैं, मोहरहित पुरुषों के हृदय में कर्मफल से रहित अविनाशी आत्मा ही सदा निजरूप भासित होता है, हे जीव ! यदि तू इन दोनों भेदों को समझ गया है, तो तू इन स्त्री-पुत्रादि, कि जिन्हें तूने अपने मान लिये हैं, उनमें एकत्वबुद्धिरूप दुष्ट मोह को क्षणमात्र में क्यों नष्ट नहीं कर डालता है ?

Scanned by CamScanner

ज्ञान का मालिक !

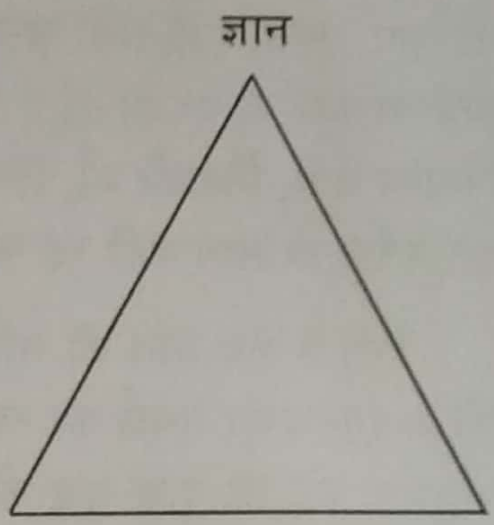

एक त्रिभुज या त्रिकोण बनाओ। उसके शीर्ष पर ज्ञान को रखो और निचले दोनों कोणों में से एक पर धन-वैभव, राज-सम्पदा आदि रखो और दूसरे पर दान-त्याग, व्रत-उपवास, पूजा-पाठ आदि रखो। ज्ञान में अपने सर्वस्व को स्थापित करो। तुम ज्ञान के मालिक, ज्ञान के स्वामी ज्ञायक तत्व हो। धन-वैभव आदि में रत होना अशुभ भाव, यह तीव्र कषाय-रूप कर्मकृत कार्य है। इसी प्रकार, दान-त्याग आदि के भाव या शुभ भाव भी मंद कषाय-रूप; कर्मकृत कार्य है।

यह आत्मा तो ज्ञान का मालिक है, न तो यह अशुभभाव-रूप है, न ही शुभभाव-रूप; न इस कार्य का कर्ता है, न उस कार्य का। यह तो जाननरूप क्रिया का कर्ता, स्वंय ज्ञायक मात्र है; य न तो क्रोध का कर्ता है न ही उसका मेटनेवाला है; न यह भोगों का कर्ता है और न ही भोगों के त्याग का कर्त्ता है यदि भोग का कर्त्ता बनेगा तो उसके त्याग का कर्त्ता भी अवश्य बनेगा। यह गणित के नियमों की भाँति ही युक्तियुक्त और निरपवाद नियम है। यदि भोग में इसके अहम्पना होगा तो इसके त्याग में भी अहम्पना जरूर होगा और तब निश्चय ही इसके ज्ञान-स्वभाव में अहम्पना स्थापित नहीं हुआ होगा।

जो आत्मा अपने ज्ञान-स्वभाव में अपनापना, एकत्व, तादात्म्य कर लेता है, उसके न तो पर के ग्रहण में अपनापना आता है और न उसके त्याग में अपनापना होता है। पर में अपनापना, यह अहम्भाव केवल उसी के मिटता है जो स्वयं को ज्ञायक स्वभाव रूप देखे-जाने और अनुभव करे। अन्यथा, पहले तो धन-वैभव में अहम्भाव रहता है, फिर उनके त्याग का अहम्भाव आ जाता है।

Scanned by CamScanner

कहीं दूसरे का अहम् पुष्ट न हो जावे

एक साधु अपने गुरु के आश्रम में रहता था। कुछ दिनों के बाद वह गुरु के सामने पड़ गया। गुरु ने उसकी तरफ देखा। गुरु के देखते ही उसको खुशी हुई, क्योंकि उसने समझा कि गुरु ने मुझे इज्जत दी। गुरु इस बात को समझ गये, उसकी आँखे नीचे झुक गयीं। इसके बाद तीन वर्ष तक गुरु ने आँखें उठाकर उसको नहीं देखा। उसने अपने साथियों से पूछा कि मेरे से क्या अपराध हो गया? उन्होंने बताया कि गुरु के देखने से तूने अपना अह्म पुष्ट किया, तेरे "मैं" भाव में सजगता आयी, इसलिये गुरु ने नज़र नीची कर ली। तीन वर्ष बाद वह फिर गुरु के सामने पड़ गया। इस बार गुरु ने उसे देखकर प्रसन्नता व्यक्त की। इस बार इस साधु के अहम् का भाव तो नहीं हुआ परन्तु कुछ आश्चर्य का भाव हुआ। तत्काल ही गुरु की दृष्टि वहाँ से हट गयी। इसने अपने साथियों से पूछा कि अब क्या हुआ? उन्होंने कहा कि अबकी बार भी उनकी प्रसन्नता को देखकर तुम्हारे भीतर कुछ हुआ, इससे मालूम देता है कि पर से तुम्हारे भीतर स्पन्दन होता है। वे तब मुस्करायेंगे जब उनकी मुस्कुराहट अथवा कोई भी क्रिया तुम्हारे भीतर कोई भी फर्क पैदा न कर सके। तीन वर्ष बाद फिर गुरु जी मिले और उन्होंने उस साधु को गले लगा लिया। परन्तु साधु को लगा कि कोई अन्य किसी अन्य को गले लगा रहा है, वह तो मात्र जान रहा है। गुरु ने कहा कि अब तुम्हारा "मैं" मर गया, अब तुम सरल हो गये, अब तुम शरीर नहीं रहे। अब तुम शरीर से अलग हो।

अब अपनी बात है। कुछ लोग हमारे अहम् को पुष्ट करते हैं, हम उन्हें अपना मित्र समझते हैं। जो हमारे अहम् को पुष्ट नहीं करते हम उनसे बचना चाहते हैं। परन्तु सही आदमी वही है जो हमारे अहम् को पुष्ट करने का साधन न बने। हम भी सही तभी हैं जब दूसरे की कोई क्रिया हमारे में कोई असर पैदा नहीं करे। यह हमारे पर ही निर्भर है। यही वास्तविक स्वतंत्रता है। अगर दूसरे की क्रिया से हमारे में क्रोध-मान पैदा हो सकता है तब हम उसके आधीन है, गुलाम हैं। हम हमारे अपने स्वामी नहीं हैं।

Scanned by CamScanner

जो था वह दे दिया

एक नग्न साधु जंगल में ध्यान कर रहे थे। उसी रास्ते से राजा श्रेणिक जा रहे थे। उन्होंने साधु की परीक्षा करने को एक मरा हुआ साँप उनके गले में डाल दिया। राजा श्रेणिक साँप डालकर अपने काम से जहाँ जाना था चले गये। रात को चेलना रानी से महाराज श्रेणिक ने कहा कि मैंने आज एक मरा हुआ साँप एक नग्न साधु के गले में डाला था। उसने तो अब तक निकाल कर फेंक दिया होगा। रानी चेलना ने कहा कि अगर वह जैन साधु होगा तो साँप निकाल कर नहीं फेंका होगा। रानी के मन में बड़ी आकुलता और दुःख हो रहा था। वह उसी समय राजा श्रेणिक के साथ वहाँ पहुँची जहाँ साधु ध्यानस्थ थे। उन्होंने देखा कि साधु ध्यानस्थ विराज रहे हैं और उस मरे हुए साँप की वजह से जो उनके गले में पड़ा था—हजारों-लाखों चीटिंया साधु के शरीर से चिपकी हुई है। महारानी दुःख से सिहर उठी और मुनिराज के आसपास में चीनी डाल दी जिसकी सुगंध से चीटियां उनके शरीर से धीरे-धीरे हटने लगी। राजा ने साँप को मुनिराज के गले से निकालकर दूर किया। कितनी देर बाद मुनिराज का ध्यान हटा और राजा-रानी दोनो ने नमस्कार किया। मुनिराज ने दोनों को ही धर्मवृद्धि का आर्शीवाद दिया। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मुनिराज ने साँप डालने वाले को और साँप निकलवाने वाले, दोनों को एक ही प्रकार का आर्शीवाद कैसे दिया? राजा श्रेणिक अपने कृत्य पर बहुत दुःखी था और पश्चाताप से भरा हुआ था।

अब आपकी बात है कि जिसके पास जो होता है वही वह दूसरे को देता है। हमारे पास क्रोध है, गाली है—अगर हम होते तो वही दूसरे को देते। मुनिराज के पास आशीर्वाद के अलावा और कुछ नहीं था अतः वही उन दोनों को दे दिया। उनके पास गाली अथवा क्रोध था ही नहीं। सवाल मुनिराज के पास क्या था, इसका है। बाल्टी कुँए में डालते हैं, साफ पानी होने पर बाहर साफ पानी आ जाता है, मैला होने पर मैला पानी आ जाता है। सवाल बाल्टी का नहीं है, सवाल है कुँए में कैसा पानी है। साँप डालना और निकालना तो बाल्टी तुल्य है। बाहर वही आता है जो भीतर होता है।

Scanned by CamScanner

खाते का मिलान तिजोरी से

एक दुकानदार दुकान बंद करने के समय अपना खाता बनाता है। दिन भर का लेन-देन लिखता है फिर बाकी निकालता है कि सब देना-लेना करने के बाद कितना बचता है। उस बाकी को तिजोरी में रखे हुए रुपये से मिलान करता है। जब तक तिजोरी से मिलान नहीं होता वह अपनी गलती खोजता रहता है। फिर उस नकद रुपये को एक कागज पर लिखकर जो दूसरे का देना है उसको उसमें से घटाकर शेष में ही अपनापना मानता है।

यही बात तत्व ज्ञान के विषय में है। पहले आगम के द्वारा वस्तु तत्व का निश्चय करे। फिर अपने अंतर तत्व से मिलान करे। वहाँ पर भी जो कर्म की चीज है वह कर्म के खाते में डाले। जो बचा उसका अपने भीतर में मिलान करे। वैसा मिलान होने पर उतने मात्र में अपनापना माने। दूसरे की अमानत पड़ी है उसे अपनी के साथ अपनी मान ले वह साहूकार नहीं है। हममें भी आठ कर्मों की अमानत पड़ी है उसे ही अपना वैभव मान लिया है। कर्मों की अमानत को बाद देने पर जो बाकी बचा मात्र एक अकेला चैतन्य, उतना ही मैं हूँ। मात्र शास्त्र ज्ञान से आत्मा उपलब्ध नहीं होता। आगम से समझकर अपनी आत्मा रूपी तिजोरी में मिलान करें और वैसा ही वहाँ उपलब्ध हो तब वस्तु तत्व की प्राप्ति कही जाती है।

★ हे मूढ प्राणी ! इस संसार में तेरे सन्मुख जो कुछ सुख या दुःख हैं, उन दोनों को ज्ञानरूपी तुला में (तराजू) चढ़ाकर तौलेगा, तो सुख से दुःख ही अनंतगुना दीख पड़ेगा, क्योंकि यह प्रत्यक्ष अनुभव गोचर हैं।

Scanned by CamScanner

एक देखिए इक जानिए रमे रहिये इक ठौर

एक शिवभूति नाम के मुनि थे। उनके ज्ञान का उघाड़ बहुत कम था। हजारों बार समझाने पर भी कुछ समझ में नहीं आता था। कुछ याद भी नहीं रहता था। गुरु ने थक कर कहा कि तुम्हें कुछ याद नहीं होता अतः तुम रोज "मा रुष, मा तुष" इन लाइनों को रटते रहा करो। इन लाइनों का मतलब था कि राग-द्वेष मत कर। मुनि इसको रटने लगे और रटते-रटते सही पाठ भूल गये। "तुष-मास" बोलते हुए किसी गाँव में किसी घर के पास से जा रहे थे। वहाँ दो स्त्रियाँ संस्कृत में बात कर रही थी। एक ने दूसरी से पूछा—"किं करोसि? दूसरी ने जवाब दिया—"तुषम् मासम् भिन्नम् करोमि अर्थात उरद की दाल और छिलके को अलग-अलग कर रही हूँ।" क्योंकि मुनिराज तुषम्-मासम् बोलते जा रहे थे। उनके कानों में ये शब्द पड़े और उनको यह ज्ञान हो गया कि जैसे दाल से उसका छिलका भिन्न है वैसे ही आत्मा से शरीर भिन्न है। यह ज्ञान होते ही आत्मा भावज्ञान रूप परिणमित हो गया और दृष्टि बाहर से हटकर चेतन पर चली गयी और उसी में रम गयी। जिसके फलरूप पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो गयी।

अब अपनी बात है। आत्म के कल्याण के लिये तो आत्मज्ञान की, आत्म अनुभव की दरकार है। जैसी पकड़ शरीर की है, जैसा अपनापना शरीर में है वैसा अपनापना अपने चैतन्य स्वभाव में आवे, जैसी पर बुद्धि कपड़े में है वैसी पर बुद्धि शरीर में हो तभी संसार की जड़ कटेगी। जब तक शरीर में अपनापना है तब तक राग-द्वेष पैदा होते ही रहेंगे। नया जन्म धारण करने का कर्म संचय होता ही रहेगा।

★ "कोई भी प्राणी, पशु-पक्षी, वृद्ध, जवान, स्त्री-पुरुष जो भी मन सहित हैं वे सम्यकदर्शन प्राप्त करने के अधिकारी हैं।" जिनकी दृष्टि सही हो गई उनको मोक्षमार्ग मिल जाता है।

Scanned by CamScanner

स्व-पर का भेद ज्ञान

एक धोबी भूल से किसी दूसरे का कपड़ा किसी दूसरे को दे गया। उस दूसरे व्यक्ति ने भी उस कपड़े को अपना समझकर पहन लिया। दूसरे दिन धोबी आया और उसने कहा कि जो कपड़ा मैं कल आपको दे गया था वह आपका नहीं था। धोबी ने उस कपड़े के चिन्ह को दिखाकर उस व्यक्ति को इसका विश्वास करा दिया। चिन्ह को देखकर उस व्यक्ति ने जान लिया कि यह कपड़ा मेरा नहीं है। उस व्यक्ति ने बिना कुछ कहे वह कपड़ा धोबी को वापिस दे दिया। उस कपड़े को वापिस करने में किसी प्रकार का दुःख भी नहीं हुआ।

अब अपनी बात है कि इसी प्रकार हमने भी इस शरीर को अपना मानकर पकड़ रखा है। आचार्य बार-बार समझाते हैं कि यह तेरे चैतन्य नहीं है। इसके जड़त्व रूपी चिन्ह को दिखाते हैं कि यह तेरे चिन्ह वाला नहीं है; परन्तु वह बात तो सुनता है, लेकिन उस चिन्ह को देखना और देखकर अपने चिन्ह से मिलान करना ही नहीं चाहता है। कदाचित कोई व्यक्ति इसकी पहचान करता है तब पहचान होते ही शरीर से अपनापना मिट जाता है, स्वामित्वपना नहीं रहता। जैसे कपड़े को उतारकर देने में देरी हो सकती है परन्तु अपनापना मिटने में देरी नहीं लगती। वैसे ही शरीर से अपनापना तो मिट जाता है, सम्बन्ध छोड़ने में कुछ समय लग सकता है। जब शरीर से दृष्टि हटाकर चेतन को अपने रूप अनुभव करे तो जन्म धारण करने का बीज ही नष्ट हो जाता है।

★ जो संसार कार्यों में जागता है वह आत्मकार्यों में सोता है और इसके विपरीत जो आत्मकार्यों में जागता है वह संसार कार्यों में सोता है।

Scanned by CamScanner

कुँए में बाल्टी !

किसी ने पानी भरने के लिए कुँए में बाल्टी डाली और उसे भरकर बाहर निकाला। बाल्टी गंदे पानी से भरकर आ गई। अब बताइये, गंदलापन किसने पैदा किया? क्या बाल्टी ने? नहीं, बाल्टी ने गंदलापन पैदा नहीं किसा, उसने तो जो कुँए में था वही बाहर ला दिया। यदि कुँए में साफ पानी होता तो बाल्टी के माध्यम से साफ पानी बाहर आ जाता, गंदला पानी था तो गंदला ही बाहर आ गया। और यदि कुँए के भीतर कुछ भी न होता तो बाल्टी खाली ही बाहर आ जाती। बाल्टी न तो गंदलापन पैदा करती है और न स्वच्छता। यदि हम बाल्टी को गंदलापन या स्वच्छता पैदा करने वाली मानते हैं तो यह हमारी अज्ञानता है।

आप कहेंगे कि बाल्टी को गंदलापन पैदा करने वाली तो कोई भी नहीं मानता?

ठीक है, परन्तु हम अपने जीवन में तो ऐसा ही मानते हैं—दूसरे ने क्रोध करा दिया, उसने मन चला दिया इत्यादि।

मान लीजिये कि किसी के गाली देने पर हमने क्रोध किया। यदि हमारे भीतर क्रोध न होता तो गाली क्या करती? गाली ने तो मात्र बाल्टी का काम किया, जो हमारे अंतरंग में था वह बाहर आ गया। यदि हममें विकार न होता तो प्रतिक्रिया पैदा न होती। इसी प्रकार स्त्री ने राग करा दिया, अथवा खोमचे वाले ने मन चला दिया, क्या ये बातें सही है? नहीं सच तो यह है कि मन हमने चलाया, गंदगी हमारे थी, हम विकारी थे, स्त्री का अवलम्बन हमने किया, विकार-रूप परिणमन हमने किया और नाम लेते हैं स्त्री का यह तो सरासर बेईमानी है।

Scanned by CamScanner

जब तक हम यह मानते रहेंगे कि पर ने, दूसरे ने हम में विकार पैदा किया है तब तक हमारे विकार के मिटने की सम्भावना ही नहीं बन सकतीं। जब हम वस्तुस्थिति को सही रूप से समझेंगे कि मैंने पर का अवलम्बन लिया, विकार के लिये लिया और इस प्रकार अपनी वजह से निज में विकार-रूप परिणमन किया है, यह गलती मेरी ही है। विकार मुझमें है, तभी हम स्वयं को ठीक करने की चेष्टा कर सकेंगे, अन्यथा नहीं। यदि हमारी मान्यता गलत ही बनी रही कि दूसरे की वजह से विकार हुआ है, तब तो हमारे विकार की उत्पत्ति भी और विनाश भी दूसरे के आधीन ठहरेगा—दूसरा दूर करेगा तो वह दूर होगा, हमारे प्रयास से वह कैसे ठीक हो सकेगा? अतः हम सदा विकारी ही बने रहेंगे।

एक सुई भी अगले जन्म में नहीं ले जा सकता!

गुरु नानक लाहौर के एक गाँव ठहरे हुए थे। एक आदमी प्रतिदिन उनके पास आता था और बार-बार कहता था कि मेरे लिये कोई सेवा बतायें एक बार गुरु नानक ने उसे एक सुई दी और कहा कि तुम्हारे लिए यहीं सेवा है कि इस सुई को मृत्यु के बाद अपने साथ ले जाना। वह आदमी घबराया कि जब मृत्यु होगी तब यह सुई कैसे साथ जा सकती है ! उसने वह सुई गुरु साहब को वापस दे दी और कहा कि मुझे क्षमा करें महाराज ! मुझ में ऐसी सामर्थ्य नहीं कि सुई को मृत्यु के बाद ले जा सकूं।

क्या यही प्रश्न हम अपने आपसे नहीं पूछ सकते कि मेरे पास क्या है जो मैं अपने साथ लेकर आया था, और क्या है जो अपने साथ लेकर जा सकता हूँ ! हम न साथ लेकर कुछ आये हैं, न साथ लेकर जा सकते हैं; तब मात्र कुछ समय के लिए इतनी मारा-मारी किस बात की है ! एक आत्मज्ञानी ही है जो यह जानता है कि मेरी मृत्यु नहीं है। सब चला जाएगा किन्तु मैं नहीं जा सकता। सब खोयेगा परन्तु मैं नहीं खो सकता। वह आत्मा खोया ही नहीं जा सकता।

Scanned by CamScanner

अज्ञानता के विकल्प

दो दोस्त बैठे बातें कर रहे थे। एक ने एक खेत का नक्शा मिट्टी पर बनाया और कहा कि यह खेत मैं ले लेता हूँ और यह बगल वाला तू ले लेना। दूसरे ने भी मिट्टी के नक्शे पर निशान लगाया और कहा कि यह बात तो ठीक है परन्तु मेरी भैंस तेरे खेत में इधर से आयेगी। पहले ने कहा, मैं तेरी भैंस को इधर से नहीं आने दूंगा। दूसरे ने कहा कि, मेरी भैंस तो इधर से ही आवेगी। पहले वाले ने ताव में आकर कहा कि अगर तेरी भैंस इधर से आवेगी तो मैं तेरी भैंस को मार दूंगा। दूसरे ने उसी मिट्टी के नक्शे पर उंगली रखकर कहा कि देख ! यह मेरी भैंस तेरे खेत में गयी। पहले ने उसके हाथ पर डण्डा मारकर कहा कि देख ! यह मैंने उसको मार दिया। इस प्रकार दोनों में लड़ाई हो गयी। कोर्ट में केस गया। जज ने पूछा कि तुम दोनों क्यों लड़े? उन्होंने कहा कि यह मत पूछिये कि झगड़ा क्यों हुआ? आपको जो दण्ड देना है सो दे दीजिए।

अब अपनी बात है। क्या यह दशा हमारी नहीं है। आगे की, पीछे की बातें सोचते रहते हैं और कषाय में पागल होते रहते हैं। वह सोचता है कि अगर उसने यह कहा तो मैं ऐसा करूँगा अथवा पीछे की सोचता है कि उस रोज उसने ऐसा कहा, मैंने ऐसा जवाब नहीं दिया। इस प्रकार आप ही अपने में विकल्प उठाता है और आप ही दुःखी होता रहता है। विकल्पों में ही आपस में झगड़ा कर लेता है। जब पता लगता है कि इन सबका कारण क्या है तो मालूम होता है कि इसकी जड़ में हमारी अज्ञानता भरी हुई है।

★ धूल ने दर्पण को आच्छादित किया है। दर्पण को नष्ट नहीं किया है। दर्पण अब भी दर्पण है, धूल ऊपर ही ऊपर है दर्पण में नहीं है। धूल को हटाते ही दर्पण प्रकट हो जाता है, ऐसे ही चेतना पर से कषाय रूपी धूल को झाड़ना है, चेतना तो प्रकट ही है।

Scanned by CamScanner

आगम ज्ञान और आत्म ज्ञान

कोई विद्वान नौका में बैठकर जा रहे थे। बीच में नाविक से बातचीत करते हुए उन्होंने पूछा कि क्या तुम संगीत जानते हो? नाविक ने कहा कि नहीं। फिर पूछा क्या व्याकरण जानते हो, पढ़ना-लिखना जानते हो? नाविक ने फिर ना कहा और कहा—मैं तो मात्र इस पानी में तैरना जानता हूँ। विद्वान ने कहा कि तुम्हारी जिंदगानी तो बस पानी में ही गयी। मैं तो न्याय, संस्कृत, गणित और बड़े-बड़े आगम ग्रन्थों को जानता हूँ। तैरने पर तो मैंने थिसिस लिखी है।

अभी यह बात चल ही रही थी कि पानी में तूफान आ गया। नौका डूबने लगी। नाविक ने पूछा कि पण्डित जी ! तैरना जानते हैं? पण्डित जी ने कहा कि मैं तो कभी पानी में उतरा ही नहीं हूँ। नाविक ने कहा कि आपने थिसिस तो तैरने पर लिखी, न्याय-व्याकरण भी पढ़ा परन्तु अब डूबना पड़ेगा। और नाविक ऐसा कहकर नौका से बाहर कूद गया और नाव डूब गयी।

अब अपनी बात है। लोग ग्रन्थों का अध्ययन करके आगम ज्ञान तो अच्छे से अच्छे तरह का कर लेते हैं औरों को समझा भी देते हैं परन्तु अभी तक उन्होंने आत्मा के बारे में ही जाना है आत्मा को नहीं जाना। वह जानकारियां उनके लिये परिग्रह बन जाती है और अहंकार पैदा कर देती है। धनवान से भी ज्यादा अहंकारी पण्डित होता है। वह कागज की नाव में बैठ कर तिरना चाहता है। आत्मा को जाने तो आत्मज्ञानी हो। इसके बिना जीवन नहीं बदल सकता। आगम से समझकर अपने में देखना है।

★ आत्मा के बारे में जानना और आत्मा को जानना दोनों बिल्कुल अलग-अलग दशायें हैं। एक बाह्य से शास्त्रादि के अवलम्बन से है तो दूसरा स्व के अनुभवन से।

Scanned by CamScanner

दबाई हुई कषाय

एक गाँव में दो मित्र रहते थे। उनमें से एक बहुत क्रोधी था। कई वर्षों बाद कोई कारण पाकर वह मुनि हो गया। कितने ही वर्षों बाद वे मुनि उसी गाँव में भ्रमण करते हुए आये। वह दूसरा मित्र उनसे मिलने गया। वह मुनि उसको पहचान तो गया परन्तु व्यवहार अनजानेपन का सा किया। कुछ देर बाद उस मित्र ने कहा—"महाराज! आपका नाम क्या है?" मुनि ने कहा—"शीतल प्रसाद।" कुछ देर बाद फिर मित्र ने पूछा—"महाराज ! मैं आपका नाम भूल गया, आपका नाम क्या है?" फिर मुनि ने कहा—"शीतल प्रसाद।" फिर मित्र जाने लगा और जाते-जाते फिर पूछा कि महाराज ! मैं आपका नाम फिर भूल गया, आपका नाम क्या है? उसेन कहा—"शीतल प्रसाद।" फिर जाते-जाते वापिस आकर पूछा—"महाराज आपका नाम क्या हैं? मैं तो फिर भूल गया। बस मुनि क्रोध में पागल हो गये और बोले—हजार बार कह दिया मेरा नाम शीतल प्रसाद है—शीतल प्रसाद है।" उस मित्र ने कहा—"महाराज ! आपका नाम तो अग्नि प्रसाद है इसीलिये मेरे को याद नहीं रहता था।"

अब अपनी बात है। आदमी क्रोध में ही घर-गृहस्थी को लात मार देता है और साधु हो जाता है। भीतर में कषाय की आग जलती रहती है, उसको दबाते-दबाते आदमी का जीवन पाखण्ड से भर जाता है। धुआँ निकलने के लिये पहले रसोईघरों में चिमनी होती थी। अगर चिमनी रोक दी जावे तो धुआँ भीतर इकट्ठा होकर घुटन पैदा कर देता है। जब सब रास्ते बंद हो जाते हैं तो धुआँ बाहर निकलने के लिये कोई नया रास्ता बना लेता है। यही कारण है कि जो काम-वासना को रोकते हैं उनके क्रोध ज्यादा पैदा होने लगता है। धर्म का सम्बन्ध कषाय दबाने से नहीं है। परन्तु पैदा ही न हो इससे है। कषाय का पैदा होना तभी बंद हो सकता है जब तत्व ज्ञान का सही निर्णय करे, अपने स्वरूप का ज्ञान हो। दबाई हुई आग कभी भी भड़क सकती है। नहीं भी भड़के तो भीतर-भीतर सुलगती रहती है। अतः कषाय के अभाव के लिये सही तत्व निर्णय जरूरी है।

Scanned by CamScanner

जहाँ मैं हूँ वही तुम हो

दो मित्र बचपन में एक साथ पढ़ते थे। बड़े होने पर एक बादशाह बन गया और एक साधु हो गया। साधु ने सब कुछ छोड़ दिया और बादशाह ने अपने राज्य को बढ़ाया, उसकी विजय की कहानियाँ दूर-दूर तक फैल गयी।

बहुत दिनों के बाद उस पुराने मित्र साधु की बादशाह के नगर में आगमन हो रहा था। बादशाह ने सोचा कि हमारा मित्र आ रहा है, उसने सब कुछ त्याग कर दिया है, अतः उसका स्वागत और सम्मान ऊँचे दर्जे का करना चाहिए। अतः उसने पूरे रास्ते में कालीनें बिछवाईं और अनेक स्वागत द्वार बनवाये। मुख्य स्वागत द्वार पर स्वागत के लिये स्वयं बादशाह अपने दरबारियों को लेकर खड़ा हुआ। कुछ लोगों ने साधु को जाकर कहा कि बादशाह आपको अपना वैभव दिखाना चाहता है। ताकि आपको हतप्रभ कर सके। साधु ने जवाब में कहा कि हम भी दिखा देंगे कि हम क्या हैं ?

जिस रोज नगर में प्रवेश हुआ, कहीं पर वर्षा नहीं हुई थी। परन्तु वह साधु घुटने तक कीचड़ से भरे पैरों को कालीनों पर रखता हुआ वहाँ पर आया। बादशाह ने उसका स्वागत किया और पूछा—"मित्र ! यह कीचड़ कहाँ से लग गया ?" साधु ने जवाब दिया—"तुम कालीन बिछवाकर अपना वैभव दिखाना चाहते हो तो हम भी उन पर कीचड़ के पैरों से चलकर अपना फकीरीपना दिखाते हैं।" यह जवाब सुनकर बादशाह ने कहा कि, "मैं समझता था आप फकीर हैं, आपमें बहुत बड़ा फर्क पड़ गया होगा। परन्तु लगता है जहाँ मैं हूँ वहीं आप हो। मैं पाकर उसका दम्भ पुष्ट करता हूँ आप त्याग कर उसी दम्भ को पुष्ट कर रहे हो।"

क्या यही कहानी हमारी नहीं है ? ग्रहण का अहंकार तो कदाचित् त्याग से छूट जावे परन्तु त्याग का अहंकार तो मरने पर भी साथ जाता है। हमने जो-जो अहंकार त्याग के साधन थे उन्हें अहंकार करने का साधन बना लिया। त्याग का तथा ज्ञान का अहंकार सबसे बड़ा अहंकार होता है। ज्ञान और त्याग तो अहंकार के नाश के कारण

Scanned by CamScanner

थे। हमने तो दवाई का ही अजीर्ण कर लिया, तब बीमारी कैसे मिटे। पर तो पर था ही उसे क्या छोड़ना ? छोड़ना तो पर का अहंकार था सो हमने उसे छोड़कर उस छोड़ने का अहंकार रख लिया। हमें अपने में खोजना है कि कहीं इस अहंकार ने त्याग के पीछे अपने पैर तो नहीं जमा रखे हैं ? हर एक आदमी यह अपेक्षा रखे हुए है कि लोग मुझे कहें या अपने में समझे कि मैं भी कुछ हूँ, ज्ञानी हूँ, धर्मात्मा हूँ। क्या यह अपेक्षा अहंकार नहीं है ? हमारा ज्ञान और त्याग आत्म-कल्याण का साधन न बनकर अहंकार करने का साधन बन गया। देखें ! कहीं यह गलती हमारे में तो नहीं है ?

भगवान भीतर है

एक बार भगवान ने सोचा कि मैं ऐसी कौन-सी जगह जाऊँ, जहाँ मुझे यह मानव हैरान न करे; यह मानव मुझे मंदिर में, जंगल में, पहाड़ पर, हिमालय की चोटियों पर, कन्दराओं में सब जगह खोज लेता है और रात-दिन का भेद किये बिना ही हे भगवान ! हे भगवान ! चिल्लाता रहता है। यहाँ तक कि चन्द्रमा तक भी पहुँच गया।

इसके लिए भगवान ने कई समझदार लोगों से सलाह ली। अंत में एक समझदार व्यक्ति ने कहा कि वह मानव आपको सब जगह खोज लेगा परन्तु आप यदि इसी के भीतर छिप जाएं तो वह आपको अपने भीतर नहीं खोजेगा, इसलिए आपको नहीं पा सकेगा। यह बात भगवान को जँच गयी और उस दिन से वह मानव के भीतर छिप गया। जहाँ उसे कोई नहीं खोजता।

यह कहानी सही हो या न हो, परन्तु यह बात सही है कि इस मानस ने भगवान को खोजने में आकाश-पाताल सभी एक कर दिया। मंदिरों, तीर्थों जंगल, पहाड़ सभी जगह भटका, परन्तु वहाँ नहीं खोजा जहाँ विराजमान हैं। यही कारण है कि इतना काल होने पर भी, हजारों वर्षों तपस्या करने पर भी वह भगवान को नहीं खोज पाया। यदि अपने अतरंग में झांकता तो पाता कि अपना चैतन्य प्रभु अपने में ही विराजमान है।

Scanned by CamScanner

कर्म की अमानत

एक मौलवीजी के दो पुत्र थे, एक १७ वर्ष का और दूसरा १८ वर्ष का। अक्सर मौलवी जी अपने लड़कों के साथ ही खाना खाया करते थे। एक दिन अकस्मात किसी दुर्घटना में उनके दोनों लड़के मर गए। लोग उन दोनों के शव लेकर घर आए। मौलवी साहब घर पर न थे। उनकी पत्नी ने वे लाशें एक कमरे में रखवा लीं और उन पर चादरें ढक दीं। मौलवी साहब जब खाने के लिए घर आये तो इस घटना से बेखबर उन्होंने कहा—"आज लड़के नहीं आये क्या ?" स्त्री बोली—"आते ही होंगे, आप तो खाना खा लो।" मौलवी जी खाना खाने को बैठे। स्त्री बोली—"आपसे एक बात पूछनी है। बरसों पहले एक आदमी मुझे दो रत्न दे गया था, आज वह अपने रत्न वापिस लेने आया था, उसको दे दूँ क्या ?" मौलवी जी बोले—"क्या यह बात भी पूछने की है ! दे क्यों नहीं दिया।" कुछ देर बाद स्त्री ने फिर पूछा—"क्या वे दोनों रत्न उसे दे दूँ ?" मौलवी जी बोले—"ये बात बार-बार क्यों पूछ रही है। दे ही देना चाहिए था।" खाना खाने के बाद मौलवी जी ने कहा कि, "लड़के अभी तक नहीं आये ?" स्त्री ने कहा—"आइए ! मैं बताती हूँ।" और उनको उस कमरे में ले गई जहाँ लाशें ढकी पड़ी थीं। स्त्री ने चादर हटाई और कहा कि वे दोनों रत्न वापिस कर दिये हैं। मौलवी जी एक बार तो हक्के-बक्के रह गये, फिर हँस पड़े और बोले कि जब दे दी दिये थे, तब मेरे से क्या पूछ रही थी ?

हमारा जीवन भी इसी प्रकार है। हम भी परभव से आये हैं, आते हुए कुछ साथ लाये नहीं, जायेंगे तब कुछ साथ लेकर जायेंगे नहीं। कर्म के उदय के अनुसार कुछ संयोग मिला है। कर्म ने अपनी चीज़ लाकर हमारे पास रखी है। जब वह जायेगा अपनी ले जायेगा। जो लाया वह भी उसी की है, हमारी नहीं है, जो ले जायेगा वह भी उसी की है, हमारी नहीं है। हमारा अपना तो हमारा चैतन्य है जो किसी का लाया हुआ नहीं है, कोई लेकर भी नहीं जा सकता। इसके अलावा सभी कर्म का है। कर्म की चीज़ में अपनापना मानना यही अज्ञानता है। जब अपनापना मानते हैं तब उन चीजों में अहंकार व

Scanned by CamScanner

ममकार पैदा होता है, कर्म ले जाता है तब रोते हैं। अगर कर्म के कार्य को कर्म का ही मानें तब न तो रोना पड़े और न अहंकार पैदा हो। यह मत सोचो कि हमारा इतना चला गया। जो गया वह भी कर्म का है और जो शेष बचा वह भी कर्म का ही है। वह अपना सब कुछ ले जा सकता था। अगर कुछ छोड़ गया तो वह उसकी मेहरबानी है।

कर्म के मध्य में भी चेतना का स्वाद

एक बार अकबर बादशाह और बीरबल बैठे थे। बादशाह ने कहा—"आज मैंने एक स्वप्न देखा कि तुम और हम दोनों भागे जा रहे हैं और तुम तो एक गोबर के खड्ढे में गिर गये और मैं गन्ने के रस के गड्ढे में गिर गया।" बीरबल ने कहा—"मैंने भी एक स्वप्न देखा है जो इससे थोड़ा आगे तक है। आप तो गन्ने के खड्ढे में गिर गये और मैं गोबर के खड्ढे में गिर गया। इतना तो ठीक; परन्तु इससे आगे यह और था कि आप मुझे चाट रहे हैं और मैं आपको चाट रहा हूँ।"

अब हमारी बात है। यह आत्मा कर्म के, कषाय के खड्ढे में गिरी हुई है। परन्तु यह आत्मा कर्म का फल सुख-दुःख का स्वाद भी ले सकती है अथवा अपने ज्ञान का स्वाद भी ले सकती है। गोबर के खड्ढे में पड़ा है अथवा गन्ने के रस के खड्ढे में, सवाल यह नहीं है। सवाल है स्वाद किसका लेना चाहता है, किसका ले रहा है। कर्म के मध्य में पड़ा हुआ अपने चेतन स्वभाव का स्वाद ले सकता है। ज्ञान भी हमारे पास है और कर्म का फल भी हमारे पास है। स्वाद लेने वाले हम भी हैं। हम चाहें तो ज्ञान का स्वाद ले लेवे और हम चाहें तो कर्म का स्वाद ले लेवें। चेतना का स्वाद हमने आज तक कभी नहीं लिया। अपने में लगे तो अपना स्वाद आवे, पर में लगे तो कर्म का स्वाद आवे। अपना स्वाद आज तक इसने नहीं लिया जो कि महास्वाद है। जिसके आगे समूचे स्वाद बेस्वाद हो जाते हैं।

Scanned by CamScanner

आत्मा अपनी अज्ञानता से बँधा है !

एक बन्दर था। उसने चने लेने के लिए एक छोटे मुँह के घड़े में हाथ डाला और चने मुट्ठी में भर लिये। अब छोटे मुँह के घड़े से बंद मुट्ठी कैसे निकले ? वह समझता है कि घड़े ने मुझे पकड़ लिया, इसलिए मुट्ठी खोलने की चेष्टा नहीं करता; यह नहीं समझता कि घड़े ने मुझे नहीं पकड़ा; मैंने ही मुट्ठी बाँध रखी है, इसलिये बँधा हूँ। अगर मुट्ठी खोल दूँ तो खुला हुआ ही हूँ।

जब तक इस प्रकार अपनी सही स्थिति को नहीं समझेगा, तब तक बँधा ही रहेगा। यही बात हमारी है। हम मानते है कि कर्म ने हमें बाँध रखा है ओर समूचा दोष कर्म का ही देखते हैं, अपने दोष को नहीं देखते। यह समझना चाहिए कि यदि मैं कषायरूप परिणमन न करूं तो खुला ही हूँ। जब तक हम अपना दोष न समझ कर पर का दोष समझेंगे, तब तक अपनी गलती को दूर करने का पुरुषार्थ हममें जागृत नहीं होगा। यह जीव पर में, शरीरादि में अपनापना स्वयं ही मानता है ओर गलती कर्म की बताता है। आप अपने स्वरूप को समझने की चेष्टा करें तो कर्म अपने आप ढीला हो जाता है। जहाँ अपने स्वभाव को अपने रूप देखा कि मिथ्यात्व कर्म का अभाव हुआ। यदि यह जीव अपने स्वभाव का अवलम्बन ले तो चारित्र-मोह कर्म उदय में आने की जगह उदयाभावी क्षय हो जाए। परन्तु जब आप ही कषाय रूप परिणमन करना चाहें तब कर्म क्या करे। पानी पर कोई तैरे तो पानी 'ना' नहीं करता, डूबे तो पानी विरोध नहीं करता। हम स्वयं ही अपना सिर पत्थर से फोड़ते हैं और कहते हैं कि पत्थर ने सिर फोड़ दिया। दूसरे को सही करने की चेष्टा करना व्यर्थ है। अपने को ठीक करने का उपाय करें; यही सही मार्ग है।

Scanned by CamScanner

आत्मा का रोग राग-द्वेष

सनत कुमार नाम के एक चक्रवर्ती हुए। उनका शरीर बहुत सुन्दर था। देवों की सभा में उनकी सुन्दरता की चर्चा हुई। दो देव उनकी सुन्दरता देखने आये। सनत्कुमार उस समय अखाड़े में कुश्ती लड़ रहे थे। देवों ने उनसे कहा कि आपकी सुन्दरता के बारे में जैसा सुना था, वह उससे भी बढ़-चढ़कर है। चक्रवर्ती ने कहा, "सुन्दरता तो जब राजसिंहासन पर बैठूं, तब देखना।"

कुछ समय बाद जब दोनों देव राजभवन में गए। चक्रवर्ती सुन्दर आभूषण पहने हुए राजसिंहासन पर बैठे थे। देवों ने देखकर छीः-छीः किया। चक्रवर्ती ने पूछा—"क्या हुआ ?" देवों ने कहा कि आपका सारा शरीर तो कोढ़ से भर गया है। चक्रवर्ती ने शरीर को देखा। एक धक्का लगा, जो कुछ समय पहले इतना सुन्दर था वह अचानक कैसा हो गया। सनत्कुमार को शरीर की असारता देखकर वैराग्य हो गया और वे जंगल में जाकर मुनि हो गये। तपस्या करने लगे।

कुछ दिन बाद उनमें से एक देव वैद्य का रूप धारण करके उस साधु के पास आया और बोला—"महाराज ! मैं बहुत बड़ा वैद्य हूँ, मैं आपके कोढ़ का इलाज कर सकता हूँ।" साधु ने कहा—"यह तो शरीर का रोग है। मुझे तो राग-द्वेष रूपी रोग हो रहा है। अगर आत्मा के इस रोग का नाश कर सकते हो तो कर दो। इस रोग का नाश कोई दूसरा नहीं कर सकता, इसका नाश तो मुझे ही करना होता है।" वैद्य वेशधारी देव ने हाथ जोड़कर चरण छू लिये और कहा—"भगवान मुझे क्षमा करें। मैं तो आपकी परीक्षा ले रहा था।"

कुष्ठ आदि तो शरीर के रोग हैं जो कि कर्म के आधीन हैं। आत्मा का रोग-द्वेष रूपी रोग है। जिस आत्मा में जितना ज्यादा राग-द्वेष है वह उतनी ही रोगी और दुखी है। पहले यह निश्चय करें

Scanned by CamScanner

कि मुझे राग-द्वेष रूपी रोग है। इसलिए मैं दुःखी हूँ। फिर यह निश्चय करें कि यह राग-द्वेष किसी दूसरे की वजह से नहीं हुआ है। मैंने शरीर और कर्मफल में अपनापना माना है, इससे हुआ है। शरीर में अपनापना अपने स्वरूप को जानने से मिटेगा। फिर चेष्टा करके अपने स्वरूप को आगम से समझें और अपने में अपने को शरीर से अलग देखें। रोगी जिस प्रकार रोग से बचने की चेष्टा करता है, रोग के आने से पहले ही उसके कारणों से बचता है और रोग होने पर उसको बढ़ने नहीं देता। तत्काल उसके नाश का उपाय करता है। वैसे ही आत्मा में राग-द्वेष रूपी रोग के उत्पन्न होने के कारणों से बचें। राग-द्वेष हो गया है तो उसको मिटाने का बलशाली उपाय करें। रात-दिन यह धुन रहे कि मेरा यह रोग कैसे मिटे। उसका उपाय मात्र एक है—बाहर से हटकर अपने में अपने चैतन्य स्वभाव में लगना जिसकी भरसक चेष्टा करें। परन्तु हमें शरीर के रोग की तो चिंता है, आत्मा राग-द्वेष से कितनी पीड़ित है, इसकी परवाह नहीं है। इस राग-द्वेष रूपी रोग को मिटाने के जो विशेषज्ञ हैं उनको खोजें और उनके बताये मार्ग पर चलें, तो रोग मिटे। आत्मानुभव रूपी दवा लें और संसार-शरीर-भोगों का परहेज करें तब यह रोग मिटें।

★ अज्ञानी जीने के लक्ष्य से जी रहे हैं, इससे उन्हें मरना अच्छा नहीं लगता, मृत्यु आने पर भी उन्हें जीने का लक्ष्य रहा करता है। ज्ञानी तो मरने के लक्ष्य से ही जीते हैं, इसी से वे पहले से ही परीक्षण व प्रयोग करके तत्पर रहते हैं, वैसे में आये मरण का आनंद से सत्कार करते हैं, उनके मृत्यु के अंतिम क्षण महा महोत्सवरूप होते हैं, जिससे वे आनंदपर्वूक देह त्याग देते हैं, जीने के भाव से तो अनंतबार जीये, किंतु मरने के भाव से कभी नहीं जीये हैं। यदि मरने के भाव से जीये, तो उसे पुनः जन्म लेना ही न पड़े।

Scanned by CamScanner

कोई किसी का नहीं

एक सेठ का बेटा घर में बैठा था। बाहर से एक साधु जा रहा था, गाता हुआ 'इस जगत में कोई न किसी का !' लड़के ने सुना। बाहर आकर साधु से बोला—"बाबाजी ! यह बात सही नहीं; मेरा बाप है, माँ है, स्त्री है, मेरे खाना खाये बिना वे खाना नहीं खाते, एक घड़ी भी मुझे न देखें तो उन्हें आकुलता हो जाती है।"

बाबाजी ने कहा—"अगर तुम्हें परीक्षा लेनी है, तो कल तुम साँस रोक कर पड़ जाना और फिर तमाशा देखना।"

लड़के ने यह स्वीकार कर लिया, तब बाबाजी उसे साँस रोकने की कला सिखाकर चले गये। अगले दिन ठीक समय पर लड़का साँस रोककर पड़ गया। घर वाले बाबाजी को ले आये और कहा—किसी तरह हमारे लड़के को जीवित कर दें। माँ ने, बाप ने, स्त्री ने कहा कि हम उसके लिये अपना जीवन देने को तैयार हैं। बाबाजी ने कहा—जब उसके लिये इतने लोग अपनी जान देने को तैयार हैं तो इसका जिन्दा होना कोई मुश्किल नहीं हैं। बाबाजी ने एक गिलास पानी मंगाया और उसमें मंत्र पढ़कर कुछ राख डाली और कहा जो इसे पियेगा वह मर जायेगा और यह लड़का ठीक हो जायेगा। पहला नम्बर माँ का था। माँ ने सोचा—मैं मर गयी तो क्या बाकी रहेगा, मेरे तो तीन लड़के और है, मैं उनमें सब्र कर लूंगी। जब उसने गिलास नहीं पकड़ा तो दूसरा नम्बर बाप का आया। उसने सोचा—जिसने नौ महीने पेट में रखा वहीं पीने को तैयार नहीं है, तो मेरा क्या ! तीसरा नम्बर स्त्री का आया। उसने सोचा—मर कर क्या होगा, बाप के पास भी पैसा है, ससुर के पास भी, खाने-रहने को तकलीफ तो है नहीं ! इस प्रकार अपना भी हाथ खींच लिया। अंततः वे सब बोले—बाबाजी आप ही इसको पी लो। लड़का, जो अब तक यह सब सुन रहा था, उठ बैठा और बाबाजी के साथ चला गया॥

अब हमारी बात है। संसार का यही स्वरूप हम चौबीसों घंटे देख रहे हैं—सभी अपने-अपने स्वार्थ में लगे हुए हैं। फिर भी हम अपना-अपना कहकर अनेक प्रकार के अन्याय-अनाचार करके भोगों

Scanned by CamScanner

की पूर्ति करते रहते हैं। घर के लोगों का भी जब तक हमसे स्वार्थ सधता है तभी तक वे हमें अपना कहते हैं। इतना सब देखते हुए भी यह जीव सावधान होकर अपना कल्याण नहीं करता।

संसार वृक्ष !

एक परदेसी जंगल में जा रहा था। उसके पीछे एक हाथी पड़ गया। हाथी से बचने के लिये भागते-भागते वह एक पेड़ की डाल पकड़ कर लटक गया। जब उसने नीचे की तरफ देखा तो वह एक कुँए में लटक रहा था। जिसमें चार साँप बैठे थे। उधर वह हाथी पेड़ को उखाड़ रहा था। उस आदमी ने ऊपर की ओर देखा तो दो चूहे उसी डाल को काट रहे थे जिसे पकड़ कर वह लटका हुआ था। जब डाली को पकड़ कर लटका तब डाली को झटका लगा और उसी वृक्ष पर लगा मधुमक्खी का एक छत्ता हिल गया। मधुमक्खियाँ उसके शरीर से लिपट गयीं और काटने लगीं। परदेसी ने जब ऊपर की तरफ मुँह किया तो मधु की एक बूँद उसके मुँह में पड़ गयी। उसी समय एक विद्याधर विमान में बैठकर वहाँ आया और बोला—"मुझे अपना हाथ पकड़ा दे ! मैं तुझे अपने विमान में बैठाकर मौत के मुँह से तुझे बचा लूँ !" परदेसी ने कहा—"ठहरो ! एक बूँद शहद की और गिर जाने दो।" और इसी प्रकार शहर की एक-एक बूँद के लोभ में लटका हुआ वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

इसी प्रकार, क्या यही दशा हमारी नहीं है ? हाथी मृत्यु का प्रतीक है। कब आयु रूपी वृक्ष उसके द्वारा उखाड़ दिया जायेगा, मालूम नहीं। दो चूहे दिन-रात के प्रतीक हैं। सदा आयु का एक-एक क्षण कम होता जा रहा है। कब डाल टूट जायेगी, पता नहीं है। नीचे गिर कर चार गतियों में भ्रमण करना है। वे चार साँप चार गतियों के प्रतीक हैं। मधुमक्खियों के रूप में स्त्री-पुत्रादि सम्बन्धी-जन चौबीसों घंटे इससे चिपटे हुए इसे काट रहे हैं। विषय-भोगों की चाहरूपी मधु-बूँद से लालायित हुआ यह भी गुरु के बताये मार्ग पर चल कर कल्याण करने को तैयार नहीं है। बार-बार श्रीगुरु सम्बोधन करते हैं। परन्तु यह "ठहर ! ठहर !" कह कर मत्यु के नजदीक पहुँचता जा रहा है।

Scanned by CamScanner

मरण निश्चित है !

एक बार गौतम बुद्ध अपने राजमहल से निकल कर, रथ में बैठकर घूमने चले। वे अपने जीवन में पहली बार ही बाहर निकले थे। सामने से एक रोगी व्यक्ति आता दिखाई दिया। रोग के कारण उससे चला नहीं जा रहा था। बुद्ध ने सारथी से पूछा—"यह क्या है, यह व्यक्ति इस प्रकार क्यों चल रहा है ?" उसने कहा—"महाराज यह रोगी है।" बुद्ध ने पूछा—"क्या मुझे भी रोग हो सकता है? क्या मेरी भी ऐसी दशा हो सकती है ?" सारथी ने कहा—हाँ महाराज !" रथ आगे चला। थोड़ी दूर पर एक वृद्ध मिला, बहुत बूढ़ा था। बुद्ध ने सारथी से फिर पूछा—"यह कौन है? यह ऐसा क्यों है ?" सारथी ने कहा—"महाराज ! यह बूढ़ा हो गया है।" बुद्ध ने पूछा—"क्या सबको बूढ़ा होना पड़ता है ?" सारथी ने कहा—"हाँ महाराज !" बुद्ध को फिर एक झटका लगा कि मेरी भी ऐसी दशा हो जायेगी तब क्या होगा ? रथ आगे बढ़ा। कुछ लोग एक मुर्दे को ले जा रहे थे। बुद्ध ने सारथी से पूछा—"यह क्या है ?" सारथी ने कहा—"महाराज ! यह मर गया।" बुद्ध ने पूछा—"क्या सबको मरना पड़ता है ?" सारथी ने कहा—"हाँ महाराज ! मरना तो सबको ही पड़ता है।" बुद्ध को फिर एक झटका लगा कि मेरी भी यही दशा होगी ! वे विचार करने लगे कि जिस संसार में रोग होना, वृद्ध होना और अंत में मत्यु होना निश्चित है वह संसार रहने लायक नहीं है। और इसी प्रकार चिंतन करते हुए वे वैराग्य को प्राप्त हो गये।

अब अपनी बात है। हम भी रोज यह देखते हैं परन्तु हमारे अंतस में कोई झटका नहीं लगता क्योंकि हम सोचते हैं कि यह दशा इसकी हुई है, हमारी नहीं होगी ! दूसरे को मरते देखकर यह कहते हैं, २० वर्ष का मर गया; परन्तु यह नहीं सोचते हम पचास वर्ष के है, हम अछूते कैसे घूम रहे है ! अगर संसार की सभी बातें अपने पर घटाना शुरू कर दें तो वास्तव में इस संसार से हमें भी वैराग्य हो जाये। यही सच्चा स्वाध्याय है। शास्त्रों का अध्ययन तो इसी स्वाध्याय

Scanned by CamScanner

के लिये किया जाता है। यही असली स्वाध्याय है, परन्तु हम तो शास्त्र पढ़कर ही संतुष्ट हो जाते हैं। सड़क पर चलने वाला भिखमंगा भी हमें शिक्षा दे रहा है कि मैंने पूर्वकाल में सप्तव्यसन का सेवन किया है इसलिये मेरी यह हालत हुई है, तू भी करेगा तो तेरी भी यही हालत होगी। रास्ते चलता पशु भी यह शिक्षा देता है कि मैंने भोगों में आसक्ति की, अन्याय, अभक्ष्य का सेवन किया, इसलिए मेरी यह हालत हुई। तू भी करेगा तो तेरी भी यही हालत होगी। अगर शिक्षा लेनी चाहें तो शिक्षा अवश्य मिल सकती है, परन्तु हम तो अंधे हैं, दूसरे को देखकर हँसते हैं, अपने विषय में नहीं सोचते।

कमाल का कमाल

कबीर दास का बेटा था, कमाल। एक बार बनारस के राजा कमाल के पास आए। उन्होंने सुना था कि कमाल कबीर से भी बड़ा वैरागी है। राजा ने जाकर एक हीरा कमाल को भेंट देना चाहा। बोले कि मैं यह हीरा आपको भेंट करना चाहता हूँ। कमाल ने बिना देखे ही कह दिया कि झोंपड़े में कहीं रख दो। राजा ने झोंपड़े की छत में घास-फूस के छप्पर में वह हीरा खोंस दिया। राजा ने सोचा कि कमाल ने तो इतना भी नहीं कहा कि क्यों लाये हैं, मुझे नहीं लेना है; बड़ा लोभी मालूम होता है।

इसके बहुत दिन बाद एक दिन वह राजा फिर कमाल के झोंपड़े में पहुँचा। कमाल से बोला कि कुछ रोज़ पहले मैं एक हीरा दे गया था। कमाल ने कहा कि जहाँ रखा था वहीं देख लो। राजा ने देखा, हीरा वहीं घास में खोसा हुआ था। राजा अपने परिणामों पर लज्जित हुआ और कमाल से माफी मांगकर चला गया।

इसको कहते हैं निरपेक्ष-व्रती, अगर यह भी कहता कि क्यों लाये हैं, मैं हीरे का क्या करूँगा; तो भी उसकी दृष्टि में यह हीरा है, कीमती है— यह बात आती है। परन्तु यहाँ तो हीरा और काँच में कोई फर्क ही नहीं रहा। राजा ने तो हीरा समझ कर दिया, परन्तु कमाल तो उसे लेने और वापिस करने, दोनों ही से अछूता रह गया। इसी को कहते हैं उदासीनता, विरक्ति अथवा घर में ही वैराग्य।

Scanned by CamScanner

हमारा अहम

एक बार एक व्यक्ति ने पत्थरों के एक ढेर से एक पत्थर उठा लिया और उसे जोर से ऊपर फेंका। जाते-जाते उस पत्थर ने दूसरे पत्थरों से कहा—"मैं अब अंतरिक्ष में जा रहा हूँ, कुछ रोज बाद वहाँ की खबर लेकर आऊँगा। बीच में मुझे कोई नहीं रोकेगा। जो मुझसे टकराएगा, चूर-चूर हो जावेगा।" वह पत्थर जाकर किसी के घर में लगी काँच की एक खिड़की से भिड़ा। काँच फूट गया। पत्थर ने कहा—"मैंने पहले ही कहा था जो मुझसे भिड़ेगा वह चकनाचूर हो जायेगा।" फिर वह कमरे के भीतर रखे सोफे पर पड़ा, कहने लगा—"मेरे स्वागत के लिये पहले से सोफा बिछा हुआ है" गृहस्वामिनी ने जब उस पत्थर को देखा तो वह उसे उठाकर बाहर फेंकने के लिए आयी। पत्थर ने कहा, "गृहलक्ष्मी भी मेरा स्वागत करने के लिये आ रही है।" घर की मालकिन ने पत्थर को खिड़की से वापिस फेंका तो पत्थर ने कहा, "अब मैं वापिस अपने परिवार के पास आ रहा हूँ।" और वह पत्थर अपने साथी पत्थरों पर गिर पड़ा।

अब अपनी बात है। क्या इसी तरह से हम अपना अहंकार पुष्ट नहीं कर रहे हैं ? कर्म के उदयानुसार, संसार में संयोग-वियोग हो रहा है और हम मान रहे हैं कि मैंने कमाया, मैंने दूसरे का ऐसा कर दिया, मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा कर सकता हूँ, मेरे बिना कुछ नहीं हो सकता, इत्यादि। इस प्रकार यह जीव अपने अहंकार में पागल हो रहा है। सम्यक मान्यता तो यह है कि कार्य कर्मानुसार होता है, मैं तो मात्र ज्ञान का मालिक हूँ, कर्म के कार्य का कर्ता नहीं हूँ। मात्र ज्ञाता हूँ। ऐसी मान्यता तभी सम्भव है जब इस जीव को अपने स्वभाव का ज्ञान हो। पर का कर्तापना, अहम्पना ही संसार की जड़ है। वह आत्मस्वरूप को जाने तो वह जड़ कटे। लोक में भी कर्म के कार्य को कर्म का माने उसका कर्ता न बनें, मात्र ज्ञाता रहे तो समस्त आकुलता से रहित हो सकता है। ज्ञानी-अज्ञानी में यही फर्क है; अज्ञानी पर का कर्ता बनकर अहंकार करता है, ज्ञानी ज्ञाता रहकर अकर्ता रहता है।

Scanned by CamScanner

अपना सो अपना, पराया सो पराया

एक सेठ का पुत्र बचपन में खो गया। बहुत खोज करने पर भी नहीं मिला। इस घटना के लगभग छह वर्ष बाद सेठजी ने एक लड़के को अपने यहाँ घर की सफाई करने, बर्तन माँजने के लिये रख लिया। जब वह लड़का काम करता तो सेठानी उस पर चिल्लाती ही रहती है कि कामचोर है, बहुत खाता है। वह उसे खाने को भी पूरा नहीं देती थी। कुछ दिनों बाद इत्तफाक से पता चला कि यह तो हमारा ही खोया हुआ लड़का है। सेठानी अब उसकी पूरी देख-रेख करती। अपने हाथ से खाना खिलाती; कहती—तूने तो अभी कुछ खाया ही नहीं है। काम़काज को हाथ नहीं लगाने देती। कल और आज़ में इतना फर्क कैसे पड़ गया। क्योंकि कल तक वह पराया था, आज अपना पुत्र हैं।

इसी प्रकार हमने भी अपनी आत्मा को तो परायी समझ रखा है और शरीर को अपना समझ रखा है। हम उल्टी चक्की चला रहे हैं। पराया होते हुए भी उसे अपना समझ कर उसकी परवाह करते हैं। इसके विपरीत जो वास्तव में अपना है उसका अहित करके भी इस पराये का—जिसे भूल से अपना समझ रखा है, हित करने की चेष्टाओं में लगे रहते हैं।

जब भेदविज्ञान के द्वारा सही समझ आती है तब हमारा व्यवहार और आचरण भी बदल जाता है। जो व्यवहार अब तक शरीर के प्रति था वैसा तो आत्मा के प्रति हो जाता है और जो आत्मा के प्रति था वह शरीर के प्रति हो जाता है, यही भेदविज्ञान की महिमा है।

★ निमित्त के या राग के आश्रय से निर्मलता प्रकट नहीं होती, पर वस्तुओं से ममत्व छुटने पर निराकुलता सहज ही प्रकट होती है।

Scanned by CamScanner

हमारा दृष्टि दोष

एक बार कहीं रामायण का पाठ हो रहा था। किंवदन्ती है कि जहाँ रामायण का पाठ होता है, वहाँ हनुमान किसी-न-किसी रूप में बैठे रहते हैं। कथा-वाचक पंडितजी बोले कि जब हनुमान अशोक वाटिका में गये तो वहाँ पर जो फूल थे, वे सफेद थे; हालाँकि ग्रन्थ में लाल लिखा था।

इस पर कुछ श्रोताओं ने कहा कि ग्रन्थों में तो लाल लिखा है। फिर आप सफेद क्यों कह रहे हैं ? पंडितजी भी अकड़ गये और कहा कि मैं कहता हूँ फूल सफेद थे।

वहीं हनुमान बैठे थे, उन्होंने कहा—मैं हनुमान हूँ, मैं कहता हूँ—लाल थे। पंडित जी फिर भी अपनी बात पर अड़े रहे।

अंतत इसके निर्णय के लिये सभी लोग रामचन्द्रजी के पास पहुँचे। रामचन्द्रजी बोले, "फूल तो सफेद थे। परन्तु हनुमान की आँखों में इतना क्रोध था कि उन्हें फूल लाल दिखाई दे रहे थे।"

यही हालत हमारी है। न कोई वस्तु इष्ट है, न अनिष्ट; वस्तु तो अपने रूप है; परन्तु हमारा जैसा दृष्टिकोण है वैसी ही दिखाई देने लगती है। हम समझते हैं वस्तु वैसी है और उसको ठीक करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु वस्तु वैसी है ही नहीं, तब हमारे ठीक करने की चेष्टा करने पर भी ठीक कैसे हो ? हमें समझ में आना चाहिए कि गलती हमारी दृष्टि की है। अगर हम अपना दृष्टिकोण सही कर लें तो वस्तु जैसी है; वैसी ही दिखाई देगी। कसूर वस्तु का नहीं, कसूर हमारे दृष्टिकोण का है। जैसे पीलिये के रोगी को सब चीजें पीली दिखाई देती हैं। परन्तु वस्तु पीली नहीं, हमारी आँख में दोष है। अपना दोष न समझकर हम वस्तु का पीलापना मिटाना चाहें तो नहीं मिट सकता। परन्तु अपना दृष्टि दोष समझकर हम दोष मिटाना चाहें तो मिटा सकते हैं। इसी प्रकार स्त्री न स्वर्ग है, न नरक है। यदि वह नरक दिखाई देती है तो भी दृष्टि दोष है और उसकी वजह से

Scanned by CamScanner

उससे भाग रहे हैं। अगर स्वर्ग दिखाई दे रही है तब भी दृष्टि दोष है और उसकी तरफ भाग रहे हैं। जिसका दृष्टिकाण सही हो गया उसके लिये न स्वर्ग है, न नरक है। न उसके पीछे दौड़ना है न उससे दौड़ना है, परन्तु अपने आप में ठहरा है। यही सही वस्तु-स्वरूप है। अज्ञानी अपना दष्टि-दोष न समझकर, पर को ठीक करने की चेष्टा करता है। ज्ञानी दृष्टि-दोष समझकर, अपने को ठीक करने की चेष्टा करता है। इसलिये ज्ञानी का आचरण सम्यक है, अज्ञानी का आचरण मिथ्या है।

तुम क्या हो ?

एक अंधा फकीर राजपथ पर खड़ा था और राजा की सवारी निकल रही थी सबसे पहले चौबदार आया, जो सवारी के आने से पहले मार्ग की सफाई कर रहा था, उसने बूढ़े को धक्का देकर कहा कि मार्ग से हट ! दिखता नहीं कि राजा की सवारी आ रही है ? बूढ़ा हँसा और बोला, "मालूम होता है चौबदार साहब हैं।"

फिर कुछ देर बाद कलैक्टर आया। उसने बूढ़े से कहा कि, "राजा की सवारी आ रही है। आपको हट जाना चाहिए।" बूढ़ा हंसा और बोला, "कलैक्टर साहब मालूम देते हैं !"

कुछ देर बाद राजा के मंत्री आये और बूढे से कुछ कहे बिना ही बगल से अपने घोड़े को निकाल कर चले गये। बूढ़े ने कहा कि मंत्री महोदय जा रहे हैं। इतने में राजा की सवारी आ गयी। बूढ़े को अंधा समझकर राजा नीचे उतरा और बूढ़े का हाथ पकड़ कर उसे किनारे खड़ा कर दिया। बूढ़ा हँसा और बोला, "राजा साहब आ गये हैं।"

अब हमारी बात है। हमारे पास क्या है इससे हमारी पहचान नहीं हैं। हमारी पहचान तो इससे है कि हम क्या हैं ! जैसे हम हैं वैसा ही सोचना, बोलना और करना हमें प्रगट करता है। जो स्वयं के इस अकृत्रिम व्यवहार को देखता है, निरीक्षण करता रहे वह स्वयं को प्राप्त कर सकता है।

Scanned by CamScanner

असली नकली की पहचान

एक बड़ा जौहरी था। उसका बहुत नाम था, परन्तु जीवन के अंतिम समय में उसके पास बिल्कुल पैसा नहीं रहा। जब वह मरने लगा तो नकली चार हीरे अपने पुत्र को देकर बोला, "इन्हें संभालकर रखना, यह तेरे काम आयेंगे। इनसे बड़ा व्यापार करना।" जौहरी मर गया।

लड़का चारों हीरे लेकर अपने चाचा की दुकान पर गया और कहा, "मुझे व्यापार करना है, मेरे पिता ये हीरे दे गये हैं।" चाचा ने देखा और सोचा कि ये हीरे तो नकली हैं। परन्तु यदि नकली बताता हूँ तो यह लड़का समझेगा कि चाचा ठगना चाहता है। अतः उसने कहा, "ये हीरे तू अपनी माँ के पास रख दे और पहले यहाँ दुकान पर बैठकर हीरे की पहचान सीख।" लड़का चाचा की दुकान पर आने लगा। थोड़े ही दिन में असली-नकली की अच्छी पहचान समझ गया। तब एक दिन चाचा ने कहा, "अब तू अपना काम अलग कर ले।" वह अपनी माँ के पास गया और अपने पिता के दिये हुए हीरे माँगे। हीरों की डिबिया खोलते ही उसने पहचान लिया ये नकली हैं और इसके साथ ही उसका हीरों के मालिकपने का अहंकार भी खत्म हो गया।

अब अपनी बात है। एक आदमी ने नकली हीरे पहन रखे थे। उसे मालूम है कि यह नकली है। उस व्यक्ति को यह अहंकार नहीं हो सकता कि मैंने हीरे पहन रखे हैं, भले ही दूसरा यह समझे कि इसने असली हीरे पहन रखे हैं। जब असली वस्तु सामने आती है तो नकली वस्तु स्वयं ही नकली दिखाई देने लगती है। उसी के साथ नकली वस्तु के स्वामित्व का अहंकार भी खत्म हो जाता है। यही बात शरीरादिक और धनादिक के प्रति है। जहाँ आत्मज्ञान होता है शरीरादिक और धनादिक का असली स्वरूप समझ में आ जाता है, वहाँ उसी के साथ उनमें जो अहंकार होता है वह भी खत्म हो जाता है।

Scanned by CamScanner

मैं अपना स्वभाव क्यों छोड़ूँ ?

एक साधु बाबा तालाब में नहा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक बिच्छू पानी में डूब रहा है। करुणा करके जब वे उसे निकालने लगे तो उसने बाबाजी को डंक मार दिया। साधु बाबा का हाथ हिल गया। बिच्छू पानी में गिर गया। ऐसा कई बार हुआ। बाबाजी उसे बार-बार निकालना चाहते, किन्तु बिच्छू डंक मार देता।

एक आदमी किनारे पर खड़ा यह सब देख रहा था। उसने कहा—"बाबाजी ! क्या आप मूर्ख हैं ? यह बार-बार डंक मार रहा है, फिर भी आप इसको निकाले जा रहे हैं ?"

बाबाजी ने कहा कि जब यह तिर्यंच होकर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो मैं मानव होकर अपना स्वभाव क्यों छोंड़ूँ ?"

बात तो यही है। हर एक जीव का अपना-अपना स्वभाव है। जब दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ रहा है तो हम अपनी सज्जनता कैसे छोड़े ? यदि हम यह मानते हैं कि यह दुष्ट है इसलिये इसके साथ दुष्टता का ही व्यवहार करना चाहिए, तब तो हम भी उसके साथ दुष्ट ही हो जायेंगे। उसका कार्य उसके आधार है और हमारा कार्य हमारे आधार है। हमारा कार्य हमारे स्वभाव को दिखा रहा है और उसका कार्य उसके स्वभाव को दर्शाता है। एक को दूसरे के स्वभाव की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए, यही सही रास्ता है। हमें अपनी क्रियाओं को, व्यवहार को, दूसरे की क्रियाओं के प्रत्युत्तर-रूप में, उसकी प्रतिक्रिया (रिएक्शन) रूप में नहीं बनाना है। यही मानसिक शान्ति का मार्ग है।

★ अगर मैं पर से प्रभावित होता हूँ तो मैं पर का दास हूँ, पर जैसा चाहे, वैसा मुझे प्रभावित कर सकता है। मेरी अपनी सत्ता फिर कुछ भी नहीं है। कोई भी बाहर से मेरे अंतरंग को यदि बदल सके तो मैं परतंत्र ही हूँ।

Scanned by CamScanner

"मैं" को खोना !

एक राजा परमात्मा की खोज में निकला। वह किसी आश्रम में गया। वहाँ के आचार्य ने कहा—"जो तुम्हारे पास हो उसे छोड़ दो।" उस राजा ने राज्य का त्याग कर दिया, सारी सम्पत्ति बाँट दी। उसके पास कुछ भी नहीं रहा। आचार्य ने उसे देखकर कहा कि जो तेरा नहीं था, उसे तो तुम छोड़ आये परन्तु जो तेरा था वही त्यागा जा सकता था, उसको छोड़ा नहीं।

राजा कुछ भी नहीं समझ सका। आचार्य ने राजा को आश्रम की सफाई करने का काम सौंपा। कुछ दिन बाद आश्रमवासियों ने आचार्य से प्रार्थना की कि राजा को इस कठोर कार्य से मुक्त कर दें। आचार्य ने कहा, "पहले परीक्षा लेनी होगी।" दूसरे दिन जब राजा कचरे की टोकरी सिर पर लेकर बाहर फेंकने को जा रहा था तो कोई व्यक्ति उससे टकरा गया। राजा ने उसे कहा कि १५ दिन पहले इतने अंधे नहीं हो सकते थे ! आचार्य ने यह बात जानकर कहा कि अभी वह वही है। कुछ दिनों बाद फिर एक आदमी राजा से टकरा गया और कचरा नीचे गिर पड़ा। राजा ने उसकी तरफ कड़ी नजर से देखा और कचरा उठाकर चला गया। परन्तु जो कहना था वह आँखों से कह दिया। कुछ महीनों बाद फिर कोई व्यक्ति टकरा गया। कचरा बिखर गया, परन्तु ऐसा लगा कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं ! उस रोज आचार्य बोले कि अब इसका "मैं" मर गया। जिसको छोड़ना चाहिए था उसको अब छोड़ दिया है।

अब अपनी बात है सम्पत्ति छोड़ना आसान है, परन्तु "मैं" छोड़ना बहुत कठिन है। "मैं" ही संसार है। जिसका "मैं" मर गया, उसका संसार खत्म हो गया। "मैं" मरने के बाद संसार में कोई रस नहीं रहता। लेकिन जो "मैं" से भरे हैं वे परमात्मा को नहीं जान सकते। परमात्मा पहचानने की शर्त है "मैं" को खोना। ईश्वर को खोजने कहीं शहर नहीं जाना है। अपने अंदर में ही है; मात्र उसे देखना है, खोजना है। वह प्राप्त होता है स्वबोध से।

Scanned by CamScanner

सभी अपनी आग में जलते हैं

एक बाबाजी यज्ञ करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपने शिष्य को आग लाने के लिए कहा। शिष्य चारों तरफ खोजकर आ गया। बोला—"आग तो कहीं भी मिल नहीं रही।" बाबाजी ने कहा कि आग तो कहीं न कहीं से लानी ही पड़ेगी। बाबाजी के आदेशानुसार शिष्य ने एक बार फिर सब ओर जाकर अच्छी तरह से खोजा, परन्तु उसे आग न मिली। आकर उसने बाबाजी से फिर निवेदन किया कि—"महाराज ! आग नहीं मिल रही।" बाबाजी ने क्रोध में कहा—"अगर कहीं नहीं मिलती तो जहन्नुम से ही ले आ।" शिष्य गुरु महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए जहन्नुम में आग लेने के लिए गया, क्योंकि जहन्नुम में तो आग हर वक्त ही जलती रहती है।

उसने वहाँ जहन्नुम के दरवाजे पर खड़े द्वारपाल से कहा, "हमें यज्ञ के लिए आग ले जानी है; थोड़ी-सी दे दोगे ? सुना है कि यहाँ तो आग निरन्तर जलती रहती है !" द्वारपाल ने उत्तर दिया—"यहाँ पर आग कहाँ, यहाँ पर तो जो लोग आते हैं वह अपनी-अपनी आग साथ लाते हैं। सभी अपनी-अपनी आग में ही जलते हैं।"

क्या यही बात हम पर भी लागू नहीं हो रही ? हम भी अपने-अपने क्रोध, मान, माया-लोभ की आग में स्वयं को जला रहे हैं। जरा अपने भीतर झांक कर गौर से देखें तो पायेंगे कि हम सब अपनी-अपनी कषाय रूपी आग में ही जल रहे हैं। और दुःखी हो रहे हैं। कोई आदमी जल्दी में चला जा रहा था, हमकों नहीं देख पाये, हमारी मान कषाय को धक्का लगा और हम सोच रहे हैं कि अब वह बड़ा आदमी हो गया, मेरे किए हुए उपकार को भूल गया, मेरी तरफ देखा भी नहीं। आपकी रोटी जहर हो गयी, आपका सोना हराम हो गया। ऐसा क्यों हुआ ? यह इसलिए हुआ क्योंकि आप अपनी मान कषाय की आग में जल रहे हैं।

हम चाहें तो अपने जीवन को स्वर्ग बना सकते हैं, और चाहें तो स्वर्ग को भी नरक बना सकते हैं। कोई दूसरा इसमें कारण नहीं है—हम स्वयं ही कारण है।

Scanned by CamScanner

राग-द्वेषरूपी चक्की

"चलती चाकी देख कर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबुत रहा न कोय॥"

एक औरत सुबह-सुबह चक्की चला रही थी। कबीर लौटते होंगे कहीं से प्रातः भ्रमण के बाद, देखा तो विचारने लगे कि सब पीसा जा रहा है ! घर लौटने पर उन्होंने यह दोहा रचा गुनगुनाते हुए। उनका बेटा कमाल भी बैठा सुन रहा था। बोला—"रुको, ठीक कहते हो, दो पाटों के बीच कोई भी साबुत नहीं बचा, लेकिन बीच में एक कील भी है, कभी उसका ख्याल किया ? उसके सहारे जो अन्न के दाने लग जाते हैं वे नहीं पिसते, जो भी उस कील का सहारा लेता है वही बच जाता है।"

इस संसार में राग-द्वेष रूपी दो पाटों के बीच में यह आत्मा पिस रही है। सर्वप्रथम तो इस अनुभूति का होना जरूरी है कि मैं स्वयं इन दो पाटों के बीच पिसा जा रहा हूँ, इसलिए मैं महादुःखी हूँ। यह अनुभूति हो तो इससे बचने का उपाय भी वहीं पर है। आत्मा के चैतन्य-स्वभाव रूपी कील का आश्रय यदि तूने ले लिया, उसको पकड़ लिया, तो हे आत्मन ! फिर तुझे कोई पीस न पाएगा। चाहे जन्म आए या मत्यु, चाहे सुख आए या दुःख, तुम इन सबसे दूर अछूते, अलग बने रहोगे। भोजन-पान करते समय, चलते-फिरते समय, बातचीत करते समय, सोच-विचार करते समय, सोते समय कभी भी उस कील को मत भूल जाना जो न कभी भोजन करती है, न चलती-फिरती है, न बातचीत करती है, न कभी सोती है और न ही विचार करती है, जो विचाररहित किन्तु फिर भी सदा सजग है। दुःख आए तो याद रखना उसे, जिस पर कभी दुःख नहीं पहुँचता। 'दुःख, सुख, प्रीति, अप्रीति, सफलता, विफलता—ये सभी द्वंद्व चक्के पर हैं; कील इन सभी से बाहर है। ऐसा ही द्वंद्वों के परे, कील की ही भांति अविचल, तू चैतन्य तत्त्व है। चक्की हरदम चल रही है और कील अपने स्थान पर स्थिर है। ऐसे ही हर समय परिणमन हो रहा है और चैतन्य स्वभाव सदा एकरूप विद्यमान है। तू अपनापन अपने चैतन्य स्वभाव में स्थापित कर और चलती हुई चक्की को देखता रह।

Scanned by CamScanner

शरीर को मरते देख !

सिकंदर जब भारत से लौट रहा था तो वह कोई अदभुत चीज यूनान ले जाना चाहता था। किसी ने बताया कि हिमालय की तराई में एक महान साधु बड़ा अदभुत है। परन्तु उसे ले जाना असम्भव है। क्योंकि वह किसी की आज्ञा मानने वाला नहीं है। अपने मन का मालिक है। सिकंदर नहीं माना। बोला, "मेरी तलवार कब काम आएगी !" हालांकि लोगों ने कहा कि जो तलवार के भय से चला जाये वह साधु नहीं है। उसको साथ ले जाना बेकार है, तो भी सिकंदर ने अपने सेनापति को उस साधु के पास भेजा। सेनापति ने साधु को सिकंदर की आज्ञा बताई। साधु ने कहा—"हम किसी के आधीन नहीं हैं, हम तो केवल अपनी आज्ञा मानते हैं।" सिकंदर खुद आया, नंगी तलवार लेकर। बोला कि आपको हमारे साथ चलना है अन्यथा हम आपको समाप्त कर देंगे। साधु ने कहा, "जिसे तुम समाप्त करोगे, हम भी उसे समाप्त होते देखेंगे, जिस प्रकार तुम इस शरीर को कटता देखोगे, उसी प्रकार हम भी देखेंगे। क्योंकि तुम जिसे काटोगे वह मैं नहीं हूँ, मैं उससे अलग हूँ। जिस शरीर को तुम साधु समझ रहे हो वह मैं नहीं हूँ और, जो मैं हूँ उसका मरण हो ही नहीं सकता, उसको कोई काट ही नहीं सकता।"

सारे दुःखों का मूल कारण है शरीर में अपनापना। राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण है शरीर में अपनापना। जितना शरीर को अपने रूप में देखोगे, उतना राग-द्वेष-मोह बढ़ेगा। जितना हम स्वयं को शरीर से अलग देखेंगे, मोह पिघलने लगेगा। दुःख का कारण राग-द्वेष है और राग-द्वेष का कारण शरीर को अपने रूप में देखना है। अपने को पहचाने बिना शरीर से अपनापन नहीं मिट सकता। शरीर से अपनापना मिटे बिना राग-द्वेष का अभाव नहीं हो सकता। राग-द्वेष के अभाव बिना जीव सुखी नहीं हो सकता। चाहे दूसरे लाखों उपाय

Scanned by CamScanner

कर लिए जायें परन्तु यदि शरीर मे अपनापना न मिटे तो दुःख नहीं मिटता। जितना-जितना राग-द्वेष का अभाव होगा उतनी-उतनी आत्मा शुद्ध होती जाएगी। राग-द्वेष का सर्वथा अभाव होने से आत्मा परमात्मा हो जाएगी। इसलिए सभी उपायों से स्वयं को शरीर से भिन्न देखना है। वही सही साधन है जो चेतना को शरीर से भिन्न दिखाने में सहयोगी हो। जिसके द्वारा शरीर और आत्मा में एकपने की-एकत्व की पुष्टि होती है, वे सही उपाय नहीं है। एक ही मंत्र है—मैं शरीर नहीं ! शरीर से अलग हूँ; इसी भावना को दृढ़ करना है। शरीर को अलग जानने का मार्ग ही तपस्या है। हर समय दुःख में, सुख में, पीड़ा में, नींद में, यह जानो कि मैं शरीर नहीं हूँ। भोजन करते, उपवास करते, कपड़ा पहनते, नग्न रहते, पूजा-दर्शन-स्तुति करते यह देखो कि मैं शरीर नहीं हूँ। जब रास्ता चलें तो पता चले कि शरीर चलता है, मैं तो केवल जान रहा हूँ। शरीर पर चोट हो तो समझ में आए कि शरीर पर चोट हुई है, मैं तो जानने वाला हूँ। तब यह अपना स्वामी आप हो जाता है। यही स्वाध्याय का फल है।

जो क्रिया इस भ्रम को तोड़े कि मैं शरीर हूँ वही धर्म क्रिया है। जो क्रिया इस भ्रम को पैदा करे कि मैं शरीर हूँ वही पाप-क्रिया है। निरंतर यह देखना है कि कोई भी क्रिया, कोई भी सोच-विचार इस अज्ञान को घना तो नहीं कर रही है, अन्यथा संसार बढ़ जाएगा। शरीर आत्मा को एक देखना अज्ञान है, भ्रम है और दो देखना ही विवेक है, सम्यक ज्ञान है। क्षण भर को भी यह भाव न आ जाए कि मैं शरीर हूँ। यही महापाप है। विचार और विवेक में अन्तर है। हमें विवेक प्राप्त करना है, विचार तो पढ़कर व सुनकर भी आ जाते हैं। जब यह विवेक पैदा होगा तो आगे की सीढ़ी स्वतः दिखाई देने लगेगी।

Scanned by CamScanner

जिसको आँख मिल गयी उसे रास्ता दिख गया

एक अंधा आदमी सड़क पर जा रहा था। किसी ने हाथ पकड़ कर उसे सड़क पार करा दी। एक अन्य आदमी ने उसका हाथ पकड़ कर उसे उसके गंतव्य तक पहुँचा दिया। अंधे ने उनका उपकार माना और सहारा देने वालों ने भी समझा कि हमने अच्छा काम किया है। परन्तु यदि कोई नेत्रदान आदि के द्वारा उसकी दृष्टि ही सही कर देता तो अंधा नहीं रहना पड़ता, वह अपना रास्ता स्वयं ही देख लेता। उसको दूसरों की दया की जरूरत नहीं रहती।

विवेक ही वह अर्न्तदृष्टि है जिससे सभी उलझनें सुलझ जाती हैं, अथवा, उलझनें उत्पन्न ही नहीं होती। रास्ते तक पहुँचाना तो एक उलझन;को सुलझाना है परन्तु विवेक के अभाव में अन्य उलझनें तो उत्पन्न होती ही रहेंगी। असली गुरु शिष्य को अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने में सहायक होता है। अज्ञानी गुरु शिष्य को अंधा रखना चाहता है जिससे उसको गुरु की जरूरत बनी रहे। असली गुरु शिष्य को वह दृष्टि देता है जिससे शिष्य को उसकी जरूरत न रहे, वह अपना रास्ता स्वयं देखकर चल सके।

★ तीन प्रकार की मूर्तियाँ होती हैं। एक दर्शक की जो 'पर' को देखती है, दूसरी दृश्य की जो सजी-धजी हुयी अपनी को दिखाती है और तीसरी वह है जो अपने अन्दर को देखती है वह दृष्टा की मूर्ति है। दृष्टा की मूर्ति ही आत्मदर्शन करने में निमित्त होती है।

Scanned by CamScanner

मेरा तो पीछे कुछ नहीं रहा !

एक राजा के महल के पास एक साधु रहता था। राजा एक दिन साधु के पास आया और उससे अपने महल में चलकर रहने की प्रार्थना की। साधु ने कुछ सोचकर राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली। राजा ने साधु को सोने के बर्तनों में भोजन परोसा, साधु ने भोजन कर लिया। राजा ने साधु को बेशकीमती वस्त्र पहनने की प्रार्थना की, साधु ने स्वीकार कर लिया। सुन्दर पलंग पर सोने के लिए कहा, उसे भी मंजूर कर लिया। कहने का तात्पर्य यह कि है कि वह राजा की तरह ही ऐशोआराम से रहने लगा। यह देख राजा को बहुत बेचैनी हुई। आखिर राजा ने एक दिन पूछ ही लिया कि अब आपमें और मुझमें क्या अन्तर है ? साधु ने कहा कि घूमने चलो तब आपको बताएंगे। सबेरे राजा और साधु दोनों घूमने गए। शहर से दूर आए तो राजा ने कहा, महाराज ! वापिस चलना चाहिए, महल बहुत दूर छूट गया है। साधु ने कहा कि, राजन ! आपका सब कुछ पीछे छूट गया है, परन्तु मेरा तो पीछे कुछ भी नहीं छूटा। आपमें और मुझमें यही अन्तर है। पीछे आपका महल है, रानी है, आपका सब कुछ है। आपका सब कुछ पीछे रह गया है; इसलिए आपको वापस जाना है। परन्तु हमें तो आगे जाना है, हमारा पीछे कुछ भी नहीं है।

यही वह अस्पर्श योग है, चीजें हैं परन्तु अपनापन नहीं है। चीजों को काम में भी लिया, परन्तु अंतस में अपनापना नहीं हुआ। यह तभी हो सकता है जब व्यक्ति भेद-विज्ञान को साधे, निरंतर जल में कमल की भाँति अछूता रहे। ऐसी भेद की भावना पैदा हो, ऐसा साहस पैदा हो तभी जीवन सफल है।

★ "मैं एक मात्र परिग्रह है। 'मैं' एक मात्र संसार है। उसे जो छोड़ता है, वही संयासी है, त्यागी है। वह धन्य भागी है।

Scanned by CamScanner

जहाँ खोया है वहीं खोज !

एक वद्धा स्त्री (बुढ़िया) अपने घर के अन्दर बैठकर अपने कपड़े सी रही थी। इतने में ही उसकी सुई खो गई। वह उसे खोजने लगी, पर वहाँ अंधेरा था, अतः उसे सुई मिल नहीं रही थी। उसी समय एक आदमी वहाँ से निकला। जब उसने देखा कि बुढ़िया माँ कुछ खोज रही है तो करुणा करके पूछा—"माँ ! क्या कर रही हो ?"

बुढ़िया बोली—"बेटा ! मेरी सुई खो गई है। उसे खोज रही हूँ।"

वह आदमी बोला—"मगर माँ ! यहाँ तो अंधेरा हो रहा है। अंधेरे में कैसे मिलेगी ? उजाले में खोजो।"

घर के बाहर बहुत उजाला था अतः बुढ़िया वहाँ आकर सुई खोजने लगी।

यही हालत हमारी है। हमारी आँखें बाहर की तरफ देखती हैं, हमारी इन्द्रियों का व्यापार बाहर की तरफ हैं, इसलिए हम बाहर खोजते हैं। परन्तु यह नहीं सोचते कि खोया कहाँ है ! खोया है अंतर में, अपने घर में, और खोज रहे हैं मंदिर में, तीर्थों में, अन्य जगह पर भला कैसे मिले ! शास्त्र में आत्मा नहीं है। शास्त्र के द्वारा आत्मा के बारे में समझ कर जहाँ चैतन्य है वहाँ देखने से मिलता है। इसी प्रकार प्रतिमा के माध्यम से चेतन को समझ कर जहाँ है वहाँ देखना चाहिए।

★ जैसे मूल के बिना वृक्ष नहीं उगता तथा नींव के बिना मकान नहीं होता, उसी प्रकार सम्यकदर्शन के बिना किसी भी प्रकार का धर्म नहीं होता।

Scanned by CamScanner

अपनी मृत्यु हर समय देखें

एक एकनाथ नामक साधु हुए। किसी ने उनसे पूछा कि क्या आपके भीतर वासना पैदा नहीं होती, विचार नहीं उठते, पशुता आपके भीतर गति नहीं करती ? एकनाथ ने कहा कि इसका उत्तर मौका पड़ने पर दूंगा। कुछ दिन के बाद एकनाथ ने उस व्यक्ति से कहा—"तुम्हारी हस्त रेखा बता रही है कि तुम्हारी आयु मात्र एक सप्ताह की है; जो कुछ तुम्हें करना हो सो कर लो।" वह व्यक्ति उसी रोज से बिस्तर पर पड़ गया। खाना-पीना सब कुछ छूट गया। एक-एक मिनट गिनने लगा; एक-एक क्षण बीतना कठिन हो गया। सारी वासनाएँ, सारे विचार खत्म हो गए। उनकी जगह केवल मृत्यु दिखाई देने लगी। सातवां दिन आया तो एकनाथ उसके पास गए। देखा सब रो रहे हैं। एकनाथ ने पूछा कोई इच्छा या वासना है ? उसने कहा कि मैं तो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। एकनाथ ने कहा कि यही हालत मेरी है। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने के लिए तुमको यह मृत्यु की बात कही थी। असल में तुम्हारी मृत्यु अभी नहीं है। मैं भी निरन्तर मत्यु देखता हूँ इसीलिए मुझमें कोई वासना और विचार पैदा नहीं होता।

हम भी दूसरों को मरते देखकर यह कहते हैं कि बेचारा इतनी जल्दी मर गया, परन्तु हमें अपनी मृत्यु दिखाई नहीं देती; अगर अपनी मृत्यु दिखाई देने लगे तो विचार और वासना उठनी ही बन्द हो जाये।

★ कोई प्राणी विषपान करे, तो उसकी वेदना से वह एक ही जन्म में कष्ट से मरता है, परंतु जिन प्राणियों ने इन्द्रिय के भोगरूपी विष का पान किया है, वे प्राणी इस संसार-वन में बारम्बार भटकते रहते हैं, बारम्बार मरते हैं।

Scanned by CamScanner

मिट्टी पर मिट्टी क्यों डालें !

एक आदमी और उसकी पत्नी जंगल में रहते थे। लकड़ी काटते थे और उनको बेचकर जो मिलता उससे अपना काम चलाते थे। एक बार सात दिन तक लगातार वर्षा होती रही। सात दिन तक उपवास करना पड़ा। भीख न मांगने का उनका नियम था। सात दिन बाद जंगल में गये तो संयोगवश एक महात्मा मिल गए। वे बोले कि कोई नियम ले लो। दम्पत्ति ने नियम लिया कि किसी की भी कोई गिरी-पड़ी चीज नहीं लेंगे। दोनों लकड़ी काटने आगे चले गये। आगे-आगे पुरुष जा रहा था, पीछे-पीछे स्त्री आ रही थी। संयोग से उसी रोज उस पुरुष को अशर्फियों से भरी एक थैली पड़ी दिखाई दी। उसने सोचा कि सात दिन से खाना नहीं मिला है, आज ही नियम लेकर आये हैं, कहीं स्त्री का मन न चल पड़े ! अतः उसने उस थैली पर मिट्टी डाल दी। इतने में स्त्री आ गयी। उसने पूछा क्या कर रहे हो ? पुरुष ने कहा कि यह थैली पड़ी थी, मैं इस पर मिट्टी डाल रहा था कि कहीं तुम्हारा मन मचल न जाए, आज ही तो हम महात्मा जी के समक्ष नियम लेकर आये हैं। उस स्त्री ने कहा—लगता है तुमसे नियम नहीं पलेगा। मैं तो नियम लेने के बाद दूसरे के धन को मिट्टी ही देखती हूँ। इस मिट्टी पर मिट्टी क्यों डाल रहे हो ? तुम्हें अभी धन दिखाई देता है इसलिए व्रत का पालन तुमसे न हो सकेगा।

यदि हमें धन में सुख दिखाई दे रहा है तो धन का त्याग नहीं हो सकता। अगर धन में नरक दिखाई दे रहा है तो भी त्याग सही नहीं है।

एक आदमी धन के पीछे लग रहा है और दूसरा आदमी धन से भाग रहा है। पहले आदमी के लिए धन स्वर्ग है, दूसरे के लिए नरक। दोनों की ही धारणायें विपरीत है। दोनों ही भाग रहे हैं। ठहरा हुआ तो वह है जो ज्ञान का मालिक है। धन न तो स्वर्ग है, न नरक; हमारे दृष्टिकोण ने उसे नरक और स्वर्ग बनाया है। अगर स्त्री सुन्दर दिखाई

Scanned by CamScanner

दे रही है तो समझना चाहिए कि स्त्री का त्याग अभी नहीं हुआ। कांच कंचन में यदि अन्तर दिखाई दे रहा है तो अभी दष्टि दोष नहीं गया। गलती वस्तु की नहीं है—गलती हमारी है, हमारी दष्टि में दोष है। जैसी वस्तु है वैसी दिखाई दे, उसमें अपनापना न आये, यही सही उपाय है।

तालाब में भी मगर प्यासा !

एक तालाब में एक मगरमच्छ रहता था। किसी साधु से एक आदमी ने पूछा—"महाराज ! आत्मा कैसी होती है ? आत्मिक सुख कैसा होता है?" तो साधु ने उस मगरमच्छ का हवाला दिया और कहा—"कुछ रोज पहले मैंने उस मगर को सुख दिया था, तुम उससे ले लो।"

वह आदमी उस मगर के पास गया और बोला कि साधु महाराज ने जो सुख आपको दिया था वह मुझे भी दे दो।

मगर ने कहा—"मैं प्यासा हूँ, पहले मुझे थोड़ा पानी पिला दो, फिर मैं तुम्हें सुख दूँगा।"

वह आदमी बोला—"तुम तालाब में रहते हो और फिर भी प्यासे हो ?"

मगर बोला—"यही बात तुम्हारे साथ भी लागू होती है। तुम स्वयं ही आत्मा हो और आत्मिक सुख को बाहर खोज रहे हो। अपने में देखो तो तुम सुखमय ही हो। अपने में नहीं खोजा, बाहर खोजते हो इसलिये आज तक नहीं मिला।,

आत्मिक सुख स्त्री, पुत्रादि, धन-दौलत में नहीं है। यह तो अपने में है। अपने में खोजो तो मिला ही हुआ है।

Scanned by CamScanner

साक्षी भाव ही दवा है !

एक राजकुमार था। वह एक साधु के सान्निध्य में दीक्षित हो गया और कठिन तपस्या करने लगा। एक रोज उस साधु ने उसे एक श्राविका के घर भिक्षा लेने को भेजा। जब वह जा रहा था, उस समय उसकी पुरानी स्मृतियाँ उसकी आँखों के सामने घूमने लगी— कल तक राजकुमार था, आज उसी मार्ग पर भिक्षा का पात्र लिए हुए जा रहा हूँ, कल तक माँ थी, पत्नी थी, प्रिय भोजन उपलब्ध था, आज कोई नहीं है; न जाने आज कैसा भोजन मिलेगा !

वह श्राविका के घर पहुँचा। उसने देखा, जो-जो भोजन उसे रुचिकर था, वह सब ही तैयार है। वह चुपचाप भोजन करने लगा। उसे स्मरण आया कि पहले तो वह भोजन के बाद आराम किया करता था, अब तो दो कोस जाना पड़ेगा। उसके भोजन कर चुकने पर श्राविका कहने लगी कि—कुछ समय के लिए विश्राम करके चले जाना। उसको आश्चर्य हुआ कि श्राविका ने मेरे मनोभावों को कैसे जान लिया ? भिक्षु ने श्राविका से पूछा तो उसने बताया कि पहले मैं अपने भावों के प्रति निरंतर जागरूक रही, जिससे जागरूकता इतनी बढ़ गयी कि अब मैं दूसरों के भावों को भी पढ़ लेती हूँ। यह सुनकर वह बहुत घबराया और सीधा गुरु के पास पहुँचा। उसने उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया और बोला कि कल मैं वहाँ नहीं जाऊँगा क्योंकि उसको देखकर मेरे मन में वासना पैदा हुई थी। उसने वह भी जान 'ली होगी। परन्तु गुरु ने कहा—"नहीं, तुम्हें वहीं जाना होगा।" दूसरे दिन वह गुरु की आज्ञा के अनुसार उसी श्राविका के घर गया। परन्तु आज वह पूर्णरूप से सावधान व जागरूक था, अपने भावों के प्रति। अपने चलने में, उठने में, हर कार्य के प्रति वह जागरूक था। उसने पाया कि अगर मैं जागरूक रहता हूँ तो कोई भाव पैदा नहीं होते। वापस आने पर वह गुरु के आगे नतमस्तक हो गया, बोला कि आज

Scanned by CamScanner

मुझे चाबी मिल गयी है। अगर जीव अपने आप में पूर्ण रूप से जागरूक रहे तो मन में विकारी भाव पैदा नहीं होते।

लोग कहते हैं कि मन वश में नहीं होता। वास्तव में मन को वश में करने का नकारात्मक प्रयास न करते हुए जागरूकता को पैदा करने का विधेयात्मक पुरुषार्थ करता है तो मन कहीं जाएगा ही नहीं। जागरूकता इस प्रकार ही होनी चाहिए कि आँखों की पलकें भी हमारी जानकारी में झपकें। कोई विचार, कोई क्रिया बेहोशी में न हो। हर क्रिया और विचार हमारी जानकारी में हो, हम उनके कर्ता न रहें; मात्र साक्षीभूत रहें। ज्ञाता रहें यही वह उपाय है जो हमें निरर्थक विचारों से बचा सकता है, मन की एकाग्रता का भी यही उपाय है। व्यक्ति जितना ज्यादा जागरूकता को बढ़ाता जायेगा, उतनी ही उदासीनता और विरक्ति बढ़ती जाएगी, उतनी ही उपयोग की स्थिरता बढ़ जाएगी, ध्यान की सिद्धि होगी। जब निरन्तर जागरूक रहते हैं तब निठल्लापन नहीं रहता। बाहर में कुछ नहीं हैं परन्तु जागरूक बने हुए है। जब जागरूकता की पूर्णता हो जाती है तब साधक साक्षी मात्र रह जाता है, यही मोक्षमार्ग है। ऐसा साक्षी भाव होने से भविष्य की इच्छायें नहीं होती और भूतकाल की याद नहीं रहती। अतः मन स्वतः शान्त हो जाता है।

★ भूतकाल तो बीत चुका, उसका मैं मालिक नहीं, वह कर्म के उदय अनुसार था। भविष्यकाल भी उदय के अनुसार घटित होगा, जो मेरे आधीन नहीं है। जो वर्तमान में हो रहा, मैं उसका मात्र जानने वाला हूँ। इस प्रकार त्रिकाल सम्बन्धी विकल्पों से रहित होना ही एकमात्र दवा है।

Scanned by CamScanner

जहाँ परिग्रह है वहाँ डर ही डर है !

दो साधु जंगल में जा रहे थे। एक गुरु, दूसरा उसका चेला। रात्रि का समय था। आगे-आगे गुरु जा रहा था, पीछे-पीछे शिष्य। गुरु के पास कंधे पर एक थैला था। गुरुजी कहते जा रहे थे—"चेला ! रात अंधेरी है, रास्ता भयानक है, बड़ा भय है, गाँव जल्दी पहुँचना है।" चेला सोच रहा था कि हम ठहरे साधु और साधु के पास कुछ नहीं होता फिर उनको भय किस बात का हो सकता है ? पता नहीं आज गुरुजी को किस बात का भय हो गया है ! थोड़ी देर आगे चलकर एक कुँआ आया। गुरुजी ने थैला चेले को दे दिया और स्वयं हाथ-मुँह धोने लगे। चेले ने थैला खोल के देखा कि उसमें एक सोने की ईंट थी। चेले को भय का कारण मालूम हो गया। उसने उस सोने की ईंट को कुँए में फेंक कर एक साधारण ईंट रख दी। गुरुजी हाथ-मुँह धोकर, थैला लेकर आगे चले, कुछ देरी बाद फिर बोले—"चेले ! रास्ता बड़ा भयानक है, बड़ा भय है।" चेले ने कहा, "अब कोई भय नहीं, भय को पीछे कुँए में फेंक दिया है।" गुरुजी ने जल्दी से थैला खोला तो देखा पत्थर की ईंट है। उन्होंने उसे फेंक दिया और हँसकर बोले, "चेले ! अब गाँव पहुँचने की जरूरत नहीं है, यहीं आराम कर लेते हैं। अब कोई भय नहीं है।" सबेरे उठने पर चेले ने कहा, "गुरुजी ! आप बड़े त्यागी हैं, आपने ईंट को फेंक दिया।" गुरुजी ने कहा, "जब पत्थर ही दिखाई दे गयी तो उसका त्याग करना नहीं पड़ता। वह अपने आप छूट जाती है।

हम लोग त्याग की महिमा गाते हैं, क्योंकि अभी हमें ईंट सोने की दिखाई दे रही है जब तक हमें त्यागे हुए पदार्थ की महत्ता नज़र आ रही है तब तक उस किए गए त्याग का अहंकार भी नही मिट सकता। असली त्याग तो तब है जब संसार के सारे पदार्थ, दान-धन-वैभव निरर्थक दिखाई देने लगें तब छोड़ा नहीं जाता, छूट

Scanned by CamScanner

जाता है। निःसार पदार्थ का बोझ कौन ढोयेगा, याद भी नहीं रहता कि कहाँ छूट गया। यह तभी सम्भव है कि जब हमें सार वस्तु का ज्ञान हो। अभी तो हमने संसार के वैभव को सार समझ कर, जो वस्तुतः सार है हमारा आत्म-तत्व, उसे असार समझकर भुला रखा है। जब उसमें सार दिखाई दे तो समस्त बाह्य वैभव स्वयं ही छूट जाता है। यदि इस प्रकार आत्मतत्व के ग्रहणपूर्वक पर-पदार्थों के निःसार बोझ का त्याग होता है, तब न तो इस बात के विज्ञापन की जरूरत होती है कि पहले इकट्ठा किया हुआ कितना कूड़ा हमने फेंका और न ही उस त्याग की याद रखी जाती है।

वह तो तू ही है ! कहीं खोया नहीं है !

एक गुरु के पास एक शिष्य शिक्षा प्राप्त करने गया और उसके आश्रम में रहने लगा। तीन महीने बाद गुरु ने शिष्य से पूछा—"कुछ मिला ?" शिष्य ने अस्वीकृति में सिर हिला दिया। गुरु ने एक थप्पड़ मारा और कहा—"अभी और साधना करो।"

तीन महीने बाद फिर वही बात हुई, शिष्य ने बताया कि नहीं मिला। इस प्रकार चार बार हो चुका, बारह महीने बीत गये। गुरु फिर शिष्य से मिला और पूछा—"मिला ?" शिष्य ने एक थप्पड़ गुरु के मारा और कहा—"वह तो मिला ही हुआ था, गया कहाँ था।" गुरु नाचने लगा।

वस्तुतः आत्म स्वभाव तो मिला ही हुआ है; वह तो कभी मिटता नहीं। आत्मा अनन्त काल से चेतन है और अनन्त काल तक चेतन रहेगा। वह तो वैसा ही है मात्र उसको देखना है, श्रद्धा प्रतीति करनी है। वह अपने आप में ही मौजूद है। परन्तु हम अपने आप को अपने में नहीं देखकर बाहर खोज रहे हैं, जहाँ वह नहीं है। इसलिए आज तक नहीं मिला और यदि बहिरंग में खोजते रहे तो मिलेगा भी नहीं; क्योंकि जहाँ उसे खोजा जा रहा है वहाँ वह है ही नहीं।

Scanned by CamScanner

अपने परमात्मा को पहचान !

एक शेर का बच्चा बचपन से ही भेड़ियों के बीच पला और अपने आप को भेड़िया ही मानने लगा। भेड़ियों को अपनी माँ, बाप, भाई, बहन समझता और उनकी भाँति ही समस्त क्रियाएँ करता; भेड़ियों की भाँति ही भागता-दौड़ता, उन्हीं की भाँति खाता-पीता, यहाँ तक कि उसकी आवाज भी भेड़ियों की भाँति ही होती। एक बार निकट के पहाड़ पर एक शेर दहाड़ा। उसकी दहाड़ सुनकर सब भेड़िये भागे। वह शेर का बच्चा भी भागा। शेर ने देखा यह शेर का बच्चा होकर भी क्यों भाग रहा है ! उसने उस बच्चे को रुकने को कहा, परन्तु वह न रुका, भागता ही गया। शेर ने छलांग लगाई और उस बच्चे को पकड़ लिया। बच्चा रोने लगा। उसने शेर के पैर पकड़ लिये, विनती करने लगा, "आप जंगल के राजा हैं, मैं दीन-अनाथ हूँ, मेरी रक्षा करें।" शेर समझ गया कि यह अपने को भेड़िया समझ रहा है। उसने समझाया, तू शेर का बच्चा है, मेरी जाति का है, मेरे जैसा है, अपनी जाति भूलकर इन भेड़ियों में क्यों रहता है ? मेरे साथ चल। परन्तु वह नहीं माना और रोकर कहने लगा कि मैं आप जैसा नहीं, दीन-अनाथ हूँ, आप महान हैं। शेर ने एक युक्ति सोची। वह उसको पकड़ कर तालाब के किनारे ले गया और कहा कि इस पानी में मेरा चेहरा देख दोनों का मिलान कर। जब शेर के बच्चे ने ऐसा किया तो उसके मुँह से अनायास ही शेर की स्वाभाविक दहाड़ निकल पड़ी।

अब वह शेर था, उसका भेड़ियापन खत्म हो गया था।

यह कहानी मात्र कहानी नहीं है। उसके माध्यम से सार तत्त्व को बताया गया है। यह जीव चैतन्य है परन्तु अपने आपको शरीर रूप मानता है। अब उसको बताना है कि तू भिखारी नहीं है, अपितु जिससे मांग रहा है उस रूप ही है। यह भगवान का दर्शन भी करता

Scanned by CamScanner

है, पूजा करता है, स्तुति करता है, नाम का जाप भी करता है, परन्तु मैं भी भगवान हूँ- ये बात नहीं समझता। अगर इसे उपदेश भी दिया जाता है तो यह मानने को तैयार नहीं कि मैं भी ऐसा हूँ अथवा ऐसा बनने की शक्ति रखता हूँ। यही कारण है कि पूजा-दर्शन-जाप करते हुए भी आज तक आत्मदर्शन नहीं हुआ। जो इस काम में तो लगे हुए हैं, परन्तु आत्मदर्शन का पुरूषार्थ नहीं करते वे मात्र भगवान की भक्ति करके कुछ पुण्य तो बाँध लेंगे परन्तु आत्म-दर्शन-सम्यक-दर्शन से अछूते ही रहेंगे। सम्यक-दर्शन के लिये मात्र भक्ति से, काम नहीं चलेगा, शेर के बच्चे की तरह पहले शेर का स्वरूप जानना-समझना होगा, फिर अपने स्वरूप का इससे मिलान करना होगा तब आत्मदर्शन होगा।

एक पका हुआ आम है, दूसरा कच्चा आम है। क्या पके आम की पूजा करने मात्र से कच्चा आम पक जाएगा? हमें यह समझना पड़ेगा कि दानों आम एक ही जाति के हैं, दोनों में समान गुण हैं और पका आम भी पहले कच्चा था, कच्चे से ही पका हुआ है। उसी प्रकार मुझमें भी परमात्मा बनने की शक्ति है। मैं परमात्मा होकर रहूँगा। व्यक्ति पहले अरहंत के स्वरूप को द्रव्य, गुण, पर्याय से जाने तब यह समझे कि उनमें व मुझमें मात्र इतना ही अन्तर है कि वे शुद्ध रूप परिणमन कर रहे हैं। मैं अशुद्ध रूप। परन्तु वे भी अशुद्ध परिणमन को मिटाकर शुद्ध हुए हैं। मेरी आत्मा उन जैसी ही है, फर्क मात्र परिणमन का है। तभी सम्यक-दर्शन हो सकता है, परमात्मपना जागृत हो सकता है।

जो स्थिति शेर के बच्चे की है। शेर होते हुए भी अपने को भेड़िया मानकर भेड़िया बना हुआ है अब वह शेर कैसे हो इसका जो उपाय है वही उपाय हमारे लिये भी है। उसी उपाय से सम्यक्-दर्शन प्राप्त हो सकता है।

Scanned by CamScanner

अपने को गिनना भूल गये !

एक बार कुछ देहाती लोगों ने एक नदी पार की। नदी पार करके उन्होंने सोचा कि कहीं कोई नदी में छूट न गया हो, अतः अपने को गिन लेना चाहिए। उन्होंने अपने को गिना। गिनती करने पर उनके दुःख का पार नहीं रहा, क्योंकि वे दस आदमी आये थे, परन्तु अब नौ ही रह गये थे। बारी-बारी से सबने गिना, परन्तु सबने यही गलती की कि अपने आपको किसी ने नहीं गिना। वे अपने खोए हुए साथी के लिये रोने लगे। उनकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें ! तभी एक समझदार व्यक्ति उधर से गुजरा। उसने उनके रोने की वजह पूछी। वे ग्रामीण लोग बोले—"हमारा एक साथी नदी पार करते समय डूब गया है, हम लोग दस थे लेकिन अब नौ रह गए हैं।" उस व्यक्ति ने उन्हें गिना—वह नौ नहीं थे, दस ही थे। उसने उनमें से एक देहाती से कहा कि इस बार फिर गिनों, साथ ही अपने को भी गिनों, खुद को गिनना मत भूलो। उन ग्रामीणों का दुःख तभी मिट सका जब उन्होंने स्वयं को गिना।

क्या यही गलती हम भी नहीं कर रहे है ! हम अपने को गिनना भूल जाते है—वे साथी के खोने से कितने दुःखी थे—हम अपने ही खो जाने से दुःखी है। सबको गिन लिया, पर अपने को गिनना भूल गये। यही अज्ञानता है। जिसने स्वयं को गिना, उसी का गिनना है। जिसने स्वयं को जान लिया, उसी का जानना सही है।

★ अगर यह जान लिया कि मृत्यु मुझे नहीं मिटा सकती क्योंकि उससे पहले भी मेरा अस्तित्व है और उसके बाद में भी मेरा अस्तित्व है तब यह मृत्यु भी जीवन की तरह आनन्दरूप है।

Scanned by CamScanner

नाव खूंटे से बंधी है

एक रोज संध्या के समय जब रात्रि होने वाली थी, पूर्ण चाँद उगने वाला था, चार दोस्तों ने डटकर भांग पी ली और रात्रि में नाव से नदी में घूमने निकले। भांग का नशा चढ़ गया था। रात्रि भर नाव खेते रहे। जब सवेरा होने को आया तब नशा कम हुआ। एक ने पूछा कि नीचे उतरकर देखें तो सही हम लोग कहाँ तक आ गये हैं। रात भर नाव चलाते रहे हैं। वह नीचे उतरा देखा, और हँसने लगा। दूसरे ने पूछा क्यों हँसता है, बताता क्यों नहीं, कहाँ आ गये हैं ? उसने कहा कि अगर तुम भी उतर कर आवोगे तो हँसे बिना नहीं रहोगे। वह भी नीच उतरा और देखता है कि नाव खूंटे से बंधी पड़ी है। रात भर खेने के बाद भी वहीं की वहीं खड़ी है।

अब सोचिए—क्या यह हमारी बात नहीं है ? अगर आत्म-दर्शन नहीं किया, शरीर से भिन्न अपने चैतन्य स्वभाव को अपने रूप अनुभव नहीं किया तो फिर चाहे कितने ही व्रत, उपवास आदि करते रहें, मुनिपना भी पालन करें और समझते रहें कि हमने जीवन भर धर्म का सेवन किया है, परन्तु ज़ब तत्व दृष्टि से देखेंगे तब पायेंगे कि इनसे हमें पापबंध की जगह पुण्यबंध तो कदाचित हुआ, कषायें तो दबीं परन्तु नष्ट नहीं हुई। हम उसी को मोक्षमार्ग मानकर संतुष्ट हो गये हैं। इतना ही हुआ कि लोहे की बेड़ी की जगह सोने की बेड़ी से बंध गये, परन्तु बंधन का नाश नहीं हुआ। हम संसार रूपी खूंटे से बंधे पड़े हैं। वहीं के वहीं खड़े हैं। हमने मात्र परहेज ही किया है दवाई नहीं खाई है। दवाई तो भेद विज्ञान है। व्रतादि तो परहेज के समान है। परहेज दवाई के साथ ही होता है। हमने भेद विज्ञान रूपी दवाई का सेवन नहीं किया है परन्तु मात्र परहेज ही करते रहे और उसी को दवाई मान लिया है। इसलिये हमारा राग-द्वेष नहीं मिट सकता। नाव वहीं की वहीं खड़ी है।

Scanned by CamScanner

शांतचित्त है द्वार प्रभु का !

एक गुरु ने अपने कुछ शिष्यों को अध्ययन के लिए बड़े गुरुकुल में भेजा। कई वर्षों के बाद एक को छोड़कर और सभी शिक्षा प्राप्त करके आ गये। कुछ दिनों बाद वह अंतिम शिष्य भी आ गया। गुरु ने उससे पूछा—"तुम सबके बाद आये हो, तुम तो सबसे ज्यादा सीख कर आये होगे ?" शिष्य ने कहा—"मैं सीखकर नहीं आया, परन्तु जो आपने सिखाया था वह मिटाकर आया हूँ।"

फिर, एक दिन वही शिष्य गुरु के मालिश कर रहा था। मालिश करते हुए स्वतः ही बोला, कि मंदिर तो सुंदर है पर भीतर भगवान की मूर्ति नहीं है ! ऐसा सुनते ही गुरु के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। गुरु का क्रोध देखकर वह शिष्य हँसने लगा।

फिर एक रोज़ गुरु बैठे थे। वह पास आकर बैठ गया। उसने देखा एक मधुमक्खी भीतर आ गयी है और बाहर जाने का मार्ग खोज रही है और बार-बार दीवार से टकरा जाती है। वह शिष्य जोर से बोला, "अरी मक्खी ! तू तो अंधी है; द्वार तो खुला है, तू बंद खिड़की से निकलने की चेष्टा क्यों कर रही है ? जहाँ से तेरा आना हुआ वहीं द्वार है !" मधुमक्खी ने तो शायद नहीं सुना, परन्तु गुरु को द्वार जरूर मिल गया। उन्होंने कहा "वाकई में मेरा मन्दिर भगवान से खाली है। अब मेरी समझ में आया कि मैं दीवार से टक्कर मार रहा हूँ। दरवाजा मुझे दिखा ही नहीं। अब मैं क्या करू ?" उसी समय उसने देखा कि मक्खी चुपचाप दीवार पर बैठी है और मात्र बस बैठी ही है और देखा की द्वार से मक्खी बाहर जा रही है।

अब अपनी बात है। भगवान को पाने के लिए, मोक्ष प्राप्त करने के लिए हमें कुछ नहीं करना है। केवल शांत होकर मात्र देखना है। राग-द्वेष छोड़कर मात्र देखते रहें तो हम पायेंगे कि द्वार मिल गया।

Scanned by CamScanner

अपने में होना साधुता !

एक गुरु और एक शिष्य दोनों रात्रि में एक जंगल में से जा रहे थे। राह में आँधी, वर्षा आ गई। दोनों भीग गये और मिट्टी से लथपथ हो गये। भूख और थकान से वे अधमरे हो रहे थे। अभी गाँव तक पहुँचने के लिए काफी चलना था। तभी गुरु ने कहा, "वास्तविक साधु वह नहीं है जो अंधों को आँखें दे, बीमारों को स्वस्थ कर दे और मेरे हुओं को जिला देवे।" उसने फिर कहा—"वह भी वास्तविक साधु नहीं है जो पशुओं और पत्थरों की भाषा समझता हो, जिसको सारे जगत का ज्ञान उपलब्ध हो गया है !" कुछ देर बार फिर उसने कहा—"वह भी वास्तविक साधु नहीं है जिसने अपना सर्वस्व त्याग दिया हो।"

तब शिष्य से चुप नहीं रहा गया और उसने पूछा—"फिर वास्तविक साधु कौन है ?"

गुरु ने कहा—"अभी हम लोग गाँव की सराय के दरवाजे पर पहुँचेंगे और दरवाजा खटखटायेंगे। द्वारपाल रात की ठंडी में नींद से उठकर आयेगा और बोलेगा—"भिखारियों ! भिखमंगों ! यहाँ से भाग जाओ, यहाँ पर कोई जगह नहीं है !' और द्वार बंद कर लेगा। हम दोनों भूखे, थके और मिट्टी से लथपथ, ठंड से ठिठुरते हुए फिर द्वार खटखटायेंगे और वह द्वारपाल बाहर आकर हमें धक्का देगा, लकड़ी से हम पर चोट करेगा। और यदि तब भी हमारे भीतर कुछ नहीं होगा, शांत बने रहेंगे और उस द्वारपाल में भी हमें वही चैतन्य दृष्टिगोचर होगा जो हमारे में है तो यही वास्तविक साधुता है।"

वास्तव में सब परिस्थितियों में शांति, सरलता और समता को उपलब्ध कर लेना ही साधुता है।

Scanned by CamScanner

निर्मलता की जड़ साक्षी भाव !

गौतम बुद्ध जब वृद्ध हो गये थे, तब वे एक दिन दोपहर में एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। उनका शिष्य आनन्द उनके लिये पास के झरने से पानी लेने गया था। झरने में से अभी-अभी कुछ गाड़ियाँ निकली थीं अतः झरने का पानी गंदा हो रहा था। अतः आनन्द वापिस आ गया और गौतम बुद्ध से बोला—"झरने का पानी तो गंदा है, मैं नदी से पानी लाता हूँ।" गौतम बुद्ध ने उसे वापिस उसी झरने का पानी लाने को भेजा। आनन्द ने फिर खाली हाथ आकर कहा—"वह पानी लाने लायक नहीं है।" गौतम बुद्ध ने उसे तीसरी बार फिर वहीं भेजा। अबकी बार आनन्द चकित रह गया; पानी बिल्कुल निर्मल था, कीचड़ व मैल नीचे बैठ गया था। आनन्द पानी लेकर आ गया। गौतम बुद्ध ने पूछा—"अबके पानी साफ कैसे मिल गया ?" आनन्द ने कहा—"धीरे-धीरे कीचड़ नीचे बैठ गई और पानी साफ हो गया।"

अब अपनी बात है। जब विकल्पों के द्वारा मन मलिनता को प्राप्त हो जाता है तब उसका उपाय है कि उन विकल्पों को देखते जायें, देखते जायें। अगर हम लगातार देखते हैं तो हम पायेंगे कि विकल्पों का मैल नीचे बैठ गया है और मन निर्मल हो गया है। केवल साक्षी होना है और मन निर्मल हो जाता है। निर्मल करना नहीं है मात्र धीरज से देखना है।

★ जब तक कुछ भी ज्ञेय शेष है-तब तक जानना कि साक्षात् पर का है स्व का नहीं जब कोई ज्ञेय न रहे, तब जो बचा है वहीं ज्ञान हैं-वही सत्य है।

Scanned by CamScanner

सम्यक् देखना !

एक जंगल में से दो मुनि जा रहे थे। शरीर की दृष्टि से वे पिता-पुत्र थे। पुत्र आगे-आगे चल रहा था, पिता पीछे था। जंगल एकदम भयानक था। दोनों तत्त्वचर्चा करते जा रहे थे कि शरीर अलग है और चैतन्य आत्मा अलग है; शरीर के नाश से आत्मा का नाश नहीं होता। इतने ही में अचानक सिंह का गर्जन हुआ। पिता ने पुत्र से कहा, "तुम पीछे आ जाओ, यहाँ खतरा है।" किन्तु पुत्र नहीं आया। पिता ने दोबारा कहा, किन्तु पुत्र नहीं ही आया। सिंह सामने आ चुका था। मृत्यु सामने खड़ी थी। पुत्र बोला, "मैं शरीर नहीं हूँ, मैं चैतन्य हूँ, मेरा नाश हो ही नहीं सकता, मेरी मृत्यु कैसी ?" पिता तो भाग गया परन्तु पुत्र आगे बढ़ता गया; सिंह ने उस पर हमला कर दिया। वह गिर पड़ा था, पर उसे दिखाई पड़ रहा था कि जो गिरा है वह मैं नहीं हूँ। वह शरीर नहीं था इसलिये उसकी मृत्यु भी नहीं थी। पिता मात्र कहता था कि शरीर हमारा नहीं है, परन्तु दिखाई उसको यह दे रहा था कि शरीर हमारा है।

अब अपनी बात है। कहने और दिखने में मौलिक अंतर है। सही दिखने से जीवन परिवर्तित होता है, कहने से नहीं। इसलिये सम्यक्दर्शन/सही देखने को मोक्षमार्ग बताया है।

★ जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही मुख से तारों को निकालकर अपने को ही उसमें आच्छादित कर लेता है। उसी प्रकार हिताहित में विचारशून्य होकर यह गृहस्थजन भी अनेक प्रकार के आरम्भों से पाप उपार्जन करके अपने को शीघ्र ही पापजाल में फँसा लेते हैं।

Scanned by CamScanner

देना उसके आधीन, लेना हमारे आधीन !

एक साधु एक गाँव से गुजर रहे थे। कुछ लोगों ने भीड़ लगा दी और उन्हें बहुत गालियाँ दीं। साधु ने कहा, "भाइयों ! तुम्हारा काम पूरा हो गया हो तो मैं आगे जाऊँ !" उन लोगों ने कहा कि हम लोग गालियाँ दे रहे हैं क्या आपकी समझ में नहीं आतीं ?

साधु ने कहा, "तुम गालियाँ दे रहे हो, वह मैं समझ गया। लेकिन मैंने गालियाँ लेना बन्द कर दिया है। तुम्हारे देने से क्या होगा, जब तक मैं लूँगा ही नहीं ? अब मैं जाग गया हूँ, इसलिये जागकर कोई गलत चीज़ कैसे ले सकता है ? जब आदमी बेहोशी में चलता है, तब पैर में कांटा गड़ जाता है, अगर देखकर चले तो काँटा कैसे गड़ सकता है ? पिछले गाँव में कुछ लोग मिठाइयाँ लेकर आये थे, मैंने कहा कि मेरा पेट भरा है, वे लोग अपनी मिठाई अपने घर ले गये और आपस में बाँट कर खा ली। तुम लोग गालियाँ लेकर आये हो और मैं ले नहीं रहा हूँ; अब तुम उन गालियों का क्या करोगे; किसको बाँटोगे ? मैं ले नहीं सकता अतः वे आपके पास ही रह जायेगी।"

अब हमारी बात है। दूसरा कुछ भी देने आवे परन्तु यदि हम नहीं लेते हैं तो वह चीज़ उसी के पास रह जाती है। देना उसके आधीन, परन्तु लेना हमारे आधीन है। जब हम लेते हैं तब यह कह दिया जाता है कि उसने दे दी। गलती लेने वाले की है, चाहे गालियाँ हो, सुख हो, दुःख हो, मान हो, अपमान हो।

★ पर की गलती देखना तीव्र कषाय, अपनी गलती देखना मन्द कषाय, अतः तेरी शांति पराश्रित नहीं स्वाश्रित है।

Scanned by CamScanner

आखिरी बाधा

ऐसा कहा जाता है कि रामकृष्ण परमहंस देवी के बड़े भक्त थे। देवी को आहार लगाये बिना भोजन नहीं करते थे। हमेशा देवी की भक्ति में ही तन्मय रहते थे। परन्तु वेदान्त का ज्ञान नहीं था। एक बार वेदान्त के ज्ञाता पं० तोताराम उनके पास आये। उन्होंने उनसे वेदान्त पढ़ना चालू किया। जब भी आत्मध्यान की बात आती परमहंस देवी की भक्ति में लीन हो जाते। जब भी आँख मिंचकर आत्मध्यान की चेष्टा करते देवी सामने आ जातीं और वे रोने लग जाते।

कई दिन हो जाने पर भी जब यही स्थिति चलती रही हो पंडित तोताराम ने कहा कि अगर तू इसी तरह आँख मिचकर रोता रहेगा तो यह काम नहीं होगा। पंडित तोताराम ने कहा कि अगर आज तू ब्रह्मध्यान में एकाग्र नहीं हुआ तो मैं वापिस चला जाऊँगा। जिस विकल्प के द्वारा तू देवी को उपस्थित कर लेता है, उसी तरह एक विकल्प ऐसा बनाए और उस देवी के उस विकल्प के द्वारा खण्ड-खण्ड कर दे तभी बात बनेगी। जब देवी आपके ध्यान में आवेगी आप रोने लगेंगे। मैं इस काँच से आपके माथे पर घाव करूँगा और आप विकल्परूपी तलवार से उस देवी के दो टुकड़े कर देंगे। यह बात रामकृष्ण परमहंस के लिये बहुत मुश्किल थी। जिस देवी को वे अपनी माँ समझते थे उसी के टुकड़े करने थे। परन्तु पंडित तोताराम जाने को तैयार थे। वैसा ही हुआ। परमहंस ध्यान में बैठे, देवी की कल्पना बनी और पंडित तोताराम ने काँच से उनका माथा रगड़ा। उन्होंने कल्पना में ही तलवार लेकर देवी के खण्ड-खण्ड कर दिया और खण्ड-खण्ड करते ही उनका मन वहाँ से हटकर ब्रह्म में लीन हो गया।

अब अपनी बात है। क्या ऐसी ही बाधा हमारे सामने तो नहीं है ? वे देवी की उपासक थे, हम अन्य के उपासक हैं। हमने भी अपने उपास्य की उंगली पकड़ रखी है, छोड़ने को तैयार नहीं है। और जब तक यह गाडूला पकड़ रखा है तब तक निरालम्बन चलने की योग्यता नहीं आ सकती। यह आलम्बन छोड़ेंगे तभी स्वालम्बन प्राप्त कर सकेंगे। यही आखिरी बाधा है जिसको यह छोड़े तो निज स्वरूप का अवलम्बन ले सके।

Scanned by CamScanner

वाद-विवादों में अनुभव नहीं

एक समुद्र के किनारे कुछ पंडित लोग बैठे थे और उस समुद्र की गहराई के बारे में चर्चा कर रहे थे। कोई कितनी बता रहा था, कोई कितनी बता रहा था। सोच में तर्क और हेतु भी दे रहे थे। समाधान नहीं हो पा रहा था। इतने में दो नमक के पुतले आये और उन्होंने कहा कि किनारे बैठकर चर्चा करने से गहराई का पता नहीं चल सकता। अगर गहराई का पता लगाना है तो हमारे साथ आओ। ऐसा कहकर वे पानी में कूद पड़े और क्योंकि नमक के थे अतः पानी के साथ घुलकर एकमेक हो गये।

अब हमारी अपनी बात है। हम लोग शास्त्र पढ़ते हैं और चर्चा करते रहते हैं। चर्चा करने को ही हम अपनी विद्वता समझते हैं। कोई एक विरला ही व्यक्ति होता है जो वस्तु तत्त्व का स्वाद लेता है। चर्चा करने से स्वाद नहीं आता। स्वाद तो उसी को आता है तो वस्तु के साथ एकमेक हो जाता है और वस्तु स्वरूप का अनुभव करता है। चर्चा करने वाले लाखों हैं। स्वरूप का अनुभव करने वाले कोई एक आध है। आम के गुणगान करने से आम का स्वाद नहीं आता। परन्तु आम के खाने वाले को आम का स्वाद आता है। चर्चा से व्यक्ति जानकर हो सकता है परन्तु अनुभव से उसका जीवन परिवर्तन हो जाता है।

★ छोड़ना मिट्टी के समान है और पाना हीरे मोती के समान। जब हीरे-मोती पाते हैं तो पत्थर स्वयं छूट जाते हैं उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता, जब हम दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते हैं तो पहली सीढ़ी स्वयं छूट जाती है। व्यवहार में दिखाई देता है कि पहली सीढ़ी छूटी है, परन्तु इसके पूर्व ही दूसरी प्राप्त कर ली जाती है। जो कुछ बाहर से आया है वह सब मिट्टी है, धूल है।

Scanned by CamScanner

अपना-पराया

राजा श्रेणिक के राज्य काल में एक सेठ के दो स्त्रियाँ थीं। दोनों में बहुत प्रेम था। उनमें से एक के एक पुत्र पैदा हुआ। दोनों स्त्रियाँ उस बच्चे को बहुत प्रेम से पालती थीं। उस बच्चे को यह अनुभव ही न हो सका कि मेरी अपनी माँ कौन-सी है ? काल पाकर सेठ मर गया और दोनों स्त्रियों में किसी वजह से झगड़ा हो गया। अब दोनों में से प्रत्येक स्त्री उस बच्चे को अपना कहे। यह निश्चित होना मुश्किल हो गया कि बच्चे की अपनी माँ कौन है ? फैसले के लिये राजा श्रेणिक के पास दोनों स्त्रियाँ गयी। राजा श्रेणिक ने फैसला अपने लड़के अभय कुमार के जिम्मे कर दिया। बहुत दिन हो गये अभय कुमार भी फैसला न कर सका। कोई उपाय समझ में नहीं आने पर एक रोज अभय कुमार ने दोनों स्त्रियों को बुलाया और बच्चे को बुलाया। दोनों में से प्रत्येक ने बच्चे को अपना बताया। बच्चा भी यही कहने लगा कि मुझसे प्रत्येक स्त्री एक-दूसरी से ज्यादा प्यार करती है। कोई उपाय न देखकर अभय कुमार ने कहा—"इस लड़के के बीच से दो टुकड़े करके एक इसको और एक उसको दे दिया जाये।" जब जल्लाद दो टुकड़े करने लगा तो उन दो स्त्रियों में से एक ने कहा—"मुझे बच्चा नहीं चाहिए। पूरा का पूरा इस दूसरी को दे दिया जाये।" अभय कुमार समझ गये कि यह लड़का इसी स्त्री का है।

अब अपनी बात है। जिस ज्ञानी को भेद-विज्ञान हो जाता है, जिसने आत्मदर्शन कर लिया है, अपने स्वभाव को, चैतन्य को शरीर से अलग देख लिया है, यह शरीर-लड़का-बच्चा-माँ-बाप को, धन-वैभव को अपना कहता है परन्तु शब्दों से ही अपना कहता है, भीतर से अपनापना नहीं आता। गोद के लड़के में और पेट के बच्चे में जो अन्तर है वह बराबर बना रहता है। गोद लेने वाली उस बच्चे की ज्यादा देखरेख करती है, फिर भी अपनापना नहीं आता। यही बात आत्मदर्शन की है। जिसने शरीर से भिन्न अपने को देख लिया वह वचन-काय से संसारिक कार्य करते हुए भी उसका मन अपने स्वभाव में ही लगा रहता है। ऐसे व्यक्ति के संसार में आसक्ति नहीं होती।

Scanned by CamScanner

वह अपने लिये गाता है मैं आपके लिए गाता हूँ

एक बार अकबर बादशाह ने तानसेन से उसका गाना सुनकर पूछा कि "तानसेन ! क्या इससे भी अच्छा और कोई गा सकता है ?"

तानसेन—"जी महाराज ! मेरे गुरु हैं, जो इससे भी अच्छा गा सकते हैं।"

अकबर ने कहा—"मैं तुम्हारे गुरु के दर्शन को चलूंगा।" और अकबर बादशाह तानसेन के साथ उसके गुरु की झोंपड़ी में गये। सबेरे का समय था। तानसेन के गुरु भगवान का भजन गा रहे थे। बादशाह सुनकर बेहोश हो गये। तानसेन बादशाह को सजग करके लेकर आये। बादशाह ने पूछा—"तानसेन ! क्या तुम ऐसा नहीं गा सकते ?" तानसेन ने कहा—"नहीं हुजूर !" बादशाह ने पूछा—"क्यों ?" तानसेन ने बताया—"मैं आपके लिये गाता हूँ और मेरे गुरु अपने लिये गाते हैं।"

अब हमारी अपनी बात है। अगर भगवना की भक्ति भोगों के लिये, पुण्यबंध के लिये अथवा मान-बढ़ाई के लिये की जाए तो वह सच्ची भक्ति नहीं होती। वह तो मजदूरी के लिये किये हुए काम की तरह होगा। क्योंकि उसके बदले में हमें कुछ चाहिए। परन्तु जो भक्ति उन जैसा बनने के लिये उनके गुणों में अनुरागपूर्वक होती है वह सच्ची भक्ति है। जहाँ बदले में कुछ चाह नहीं है, वह निष्काम भक्ति है। जहाँ देने-लेने की बात है वह भक्ति नहीं है, व्यापार है।

★ दूसरे के मन वचन, काय की क्रिया से अगर हमारे भीतर किसी प्रकार का कम्पन होता है, तो यह हमारी कमजोरी है इसकी वजह कोई दूसरा नहीं अपितु स्वयं की कमजोरी है जिसे जानना जरूरी है।

Scanned by CamScanner

यह भी स्वप्न, वह भी स्वप्न

एक बादशाह का इकलौता बेटा बीमार था। बादशाह कई रोज से सोया नहीं था। लड़के के पास बैठा था। बैठे-बैठे उसे नींद आ गयी। उसने स्वप्न में देखा कि उसके चार लड़के हैं, जो एक-से-एक सुन्दर हैं और वह उनके साथ बैठा है। इतने में अचानक जोर से बेगम साहिबा रोने लगी और बादशाह की नींद खुल गयी। उसने देखा कि उसका इकलौता बेटा मर गया है। बादशाह भौंचक्का रह गया और सोचने लगा कि पहले वाला स्वप्न था कि यह स्वप्न है ? क्योंकि वह भी मैंने प्रत्यक्ष देखा है और यह भी प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

अब अपनी बात है कि स्वप्न तो दोनों ही हैं। एक ज्यादा समय का है और एक कम समय का है। दूसरा जगने पर स्वप्न लगता है और हम पहले स्वप्न से कभी जगे नहीं हैं। जो जग गये हैं उन्हें वह भी स्वप्न लगने लग जाता है। अगर स्वप्न में चोट लग गयी तो जागने पर इलाज नहीं करवाते। क्योंकि उसकी समझ में है कि यह स्वप्न था। इसी प्रकार इस संसार रूपी स्वप्न से जगेगा तब जानेगा कि यह संसार भी एक स्वप्न है। इसमें कुछ भी अपना नहीं है। सत्य तो वह है जो इस स्वप्न को देखने वाला है। उसे देखने वाले का ज्ञान हो जावे तो संसार स्वप्न बन जावे। अन्यथा इन स्वप्नों में ही जीवन पूरा हो जाता है। कभी कोई मीठा स्वप्न लेकर खुश हो जाता है, कभी कोई दुःख का स्वप्न लेकर दुःखी हो जाता है। दुःख के स्वप्न से घबराता है, मीठा स्वप्न लेना चाहता है। परन्तु दोनों ही स्वप्न हैं। यह पता तब लगता है जब स्वप्न के देखने वाले को जानता है।

★ जब जीव सोता है, तब स्वप्न को सत्य मानता है; जब जागता है, तब वह झूठा दिखता है और शरीर वा धन-सामग्री को अपनी गिनता है। पश्चात् मृत्यु का ख्याल करता है, तब उन्हें भी झूठी मानता है; जब अपने स्वरूप का विचार करता है, तब मृत्यु भी असत्य दिखती है और दूसरा अवतार सत्य दिखता है, जब दूसरे अवतार पर विचार करता है, तब फिर इसी चक्कर में पड़ जाता है; इस प्रकार खोजकर देखा, तो यह जन्म-मरणरूप सब संसार झूठा ही झूठा दिखता है।

Scanned by CamScanner

घर में बैरागी

एक बार एक सेठ ने चक्रवर्ती भरत महाराज से पूछा—"महाराज ! लोग आपको घर में ही बैरागी कहते हैं, यह हमारी समझ में नहीं आती; क्योंकि आपके पास इतना वैभव, इतनी स्त्रियाँ और इतनी धन-सम्पत्ति है। इसके रहते हुए आप घर में बैरागी कैसे रह सकते हैं ?" भरत महाराज ने कहा—"कुछ दिन बाद आपके प्रश्न का उत्तर देंगे।"

कुछ समय बाद एक दिन भरत महाराज ने उस सेठ को बुलवाया। उसके हाथ में तेल से लबालब भरा एक कटोरा दिया। दो सिपाहियों को नंगी तलवार लेकर उसके साथ जाने का हुक्म दिया और कहा कि इनको हमारे पूरे रनिवास में घुमाकर लाओ, किन्तु अगर इस कटोरे से एक बूँद भी तेल गिर जाये तो इनका सिर धड़ से अलग कर दिया जाये। सेठजी को समूचे रनिवास और वैभव में घुमाकर लाया गया। भरत महाराज ने सेठ जी से पूछा—"आपने क्या देखा ?" सेठजी ने कहा—"महाराज ! इस तेल के सिवाय मेरे को कुछ भी दिखाई नहीं दिया।" भरत महाराज ने कहा—"आपके प्रश्न का यही उत्तर है। हालत मेरी यही है। मेरे को समूचे वैभव में रहते हुए भी मेरे चैतन्य के सिवाय कुछ नहीं दिखाई देता।"

अब अपनी बात है। मंदिर जी में जाते हैं तो वहाँ भगवान की जगह वैभव दिखाई देता है। घर में तो वैभव में हैं ही। इसके अलावा जो वैभव नहीं प्राप्त हुआ है और प्राप्त करने की अभिलाषा है वह भी कल्पना के बल पर तैयार करके हम उसी में लगे हुए हैं। जैसे धाय का बच्चे का पालन करते हुए भी उसमें अपनापन नहीं है। जैसे मुनीम के, मालिक का काम करते हुए भी उसके लाभ-हानि में अपनापन नहीं है। धर्मशाला में ठहरते हुए और उस कमरे को अपना कहते हुए भी उसमें अपनापन नहीं है। ऐसी ही स्थिति हमारी भी धन-वैभव के बीच में भी बन सकती है, अगर हम भी शरीर से भिन्न अपने आत्म स्वभाव, का ज्ञान कर लें। इसकी दवा आत्मदर्शन ही है। तब संसार में रहते हुए भी संसार हमारे में नहीं होगा। नाव पानी में होगी परन्तु पानी नाव में नहीं होगा। घर में रहते हुए भी घर हमारा नहीं होगा। देह में रहते हुए भी विदेही रहेंगे।

Scanned by CamScanner

आत्मस्वभाव मूल है और आचरण उसका प्रतिफल है !

एक बार एक व्यक्ति की बूढ़ी माँ बीमार पड़ी। उसके एक बगीचा था, जिसकी वह देखरेख किया करती थी। वह बहुत सुन्दर था। वह बड़ी चिन्तित थी, अपने लिये नहीं, परन्तु अपने बगीचे के लिये। उस व्यक्ति ने अपनी माँ से कहा कि तुम्हारे बगीचे की देखरेख में अच्छी तरह कर दिया करूँगा। तुम बेफ्रिक रहो। दूसरे दिन से वह एक-एक पत्ते की मिट्टी झाड़ने लगा, एक-एक फूल को कपड़े से पोंछने लगा। परन्तु पेड़ और पौधे मुरझाने लगे। पंद्रह दिन में उसकी माँ की सारी बगिया उजड़ गयी। पंद्रह दिन बाद उसकी माँ बीमारी से ठीक होकर आई। उसने अपने लड़के से पूछा कि यह क्या हुआ ? उसने कहा, "मैंने तो एक-एक फूल पर पानी छिड़का, एक-एक पौधे को गले लगाकर प्रेम किया, परन्तु फिर भी सब सूख गये।" उसकी माँ हँसने लगी और कहा कि, "फूलों के प्राण उनकी जड़ में होते हैं जो दिखायी नही पड़तीं। पानी फूलों को नहीं देना पड़ता, जड़ों को देना पड़ता है। फ्रिक पत्तों की नहीं, जड़ों की करनी पड़ती है।"

यह बात हमारी है। हम लोग आचरण पर तो जोर देते हैं, परन्तु उसकी जड़ की कोई खबर नहीं है। आचरण तो प्रतिफल है। यदि जड़ को पानी मिलेगा, जड़ की संभाल की जायेगी तो फल-फूल-पत्ते तो अपने-आप ही आवेंगे और वे सही रूप में रहेंगे। परन्तु जड़ की संभाल नहीं रखी तो फल-फूल-पत्ते की संभाल करते-करते भी मुरझा जायेंगे। अपना चैतन्य स्वभाव है वह तो जड़ है, मूल है उसको संभाले तो आचरण तो फूल-पत्तों की तरह अपने आप आ जायेगा। अतः निरन्तर आत्मस्वभाव को प्राप्त करने की चेष्टा करना चाहिए।

कृत्य को बदलने से कर्त्ता बदली नहीं होता परन्तु कर्त्ता बदली होने से कृत्य बदली हो जाता है।

Scanned by CamScanner

दमन !

एक होटल में एक रात के लिये एक आदमी ठहरने के लिये आया। मैनेजर ने कहा कि हमारे पास इस समय कोई कमरा खाली नहीं है। मात्र एक कमरा है, परन्तु उस कमरे के नीचे के कमरे में एक सज्जन ठहरे हुए हैं; अगर ऊपर वाले कमरे में कोई खड़-खड़ हो जाये, आवाज हो जाये, या कोई जोर से चले तो झगड़ा हो जाता है, अतः हम आपको यहाँ नहीं ठहरा सकते। उस आदमी ने कहा कि मैं दिन भर बाजार में ही रहूँगा, रात दो बजे लौटूँगा और चुपचाप सो जाऊँगा। सुबह छः बजे उठकर चला जाऊँगा। आवाज न हो, इस बात का मैं पूरा ख्याल रखूँगा। मैनेजर ने कमरा दे दिया। वह रात को दो बजे लौटा। आते ही बिस्तर पर बैठकर अपने एक पैर का जूता खोलकर जो से पटका। अचानक उसे ख्याल आया कि आवाज नहीं होनी चाहिए और दूसरे पैर का जूता धीरे से खोलकर रख दिया और सो गया।

एक घंटे बाद नीचे वाले कमरे में ठहरे हुये सज्जन ऊपर आये और दरवाजा खटखटाया। कहा कि, "उस दूसरे जूते का क्या हुआ ? पहले जूते की तो आवाज हुई परन्तु उस दूसरे का क्या हुआ, उसी आवाज की मैं एक घंटे से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अपने को समझाने की चेष्टा की कि मुझे क्या मतलब है, परन्तु वह जूता मेरे दिमाग से निकल ही नहीं रहा है, मुझे सोने ही नहीं दे रहा है। इसलिये आपसे पूछने आया हूँ, जिससे मैं शांति से सो सकूँ।"

क्या यही हालत हमारी नहीं है ? दमन किया हुआ चित्त हमेशा व्यर्थ की बातें उत्पन्न करता रहता है। क्रोध को दबाओ, तो क्रोध प्राणों में घुसकर चक्कर काटने लगता है। काम-वासना को दबाओ तो वह सिर पर घूमने लगती है। एक तरफ से दबाओ तो दूसरी तरफ से निकलने लगती है, किसी अन्य को कारण बनाकर निकलती है। यह दमन का फल है। शांति कहाँ से, कैसे मिले ?

Scanned by CamScanner

ज्ञान और राग साथ होने पर भी भिन्न !

एक बर्तन में चीनी और पानी डालकर आग पर रखें, जैसे कि चाशनी बनाते हैं। आग जितनी तेज होगी, चीनी उतनी ही गर्म होती जाएगी। यहाँ, एक ओर से चीनी का स्वाभाविक गुण मीठापन मौजूद है और दूसरी ओर चीनी में गर्मपना है; साथ ही बर्तन और अग्नि का संयोग भी है। चीनी के अत्यन्त गर्म होने पर भी उसका मीठापन कायम है—मीठेपन का स्त्रोत चीनी स्वयं है। यद्यपि गर्म तो चीनी ही हुई है फिर भी गर्मपना उसका अपना नहीं है, अपितु अग्नि के सम्बन्ध से आ रहा है—गर्मपना के अभाव में भी चीनी का अभाव नहीं है। पुनश्च चीनी और बर्तन का संयोग सम्बन्ध है। बर्तन में होते हुए भी चीनी चीनी-रूप ही है, बर्तन-रूप नहीं है।

इसी प्रकार की स्थिति संसारी आत्मा के साथ है। चीनी के मीठेपन के स्थान पर आत्मा का ज्ञायक स्वभाव है जो शाश्वत है, त्रिकाल रहने वाला है, जिसका कभी अभाव नहीं हो सकता, जिसके अभाव में आत्मा का ही अभाव होने का असंभव प्रसंग प्राप्त होता है। चीनी में आए गर्मपने रूप विकार की भाँति ही संसारी आत्मा में राग-द्वेषादि विकारी भाव है जो कर्मरूपी अग्नि के सम्बन्ध से हो रहे हैं। ये राग-द्वेषादिक आत्मा के स्वभाव नहीं हैं, इनके अभाव में भी आत्मा का अभाव नहीं है। उदाहरण में बर्तन के स्थान पर यहाँ दृष्टांत में शरीर है। चौरासी लाख योनियों में चाहे जो भी इस आत्मा के साथ सम्बन्ध को प्राप्त हो, उसमें रहते हुए भी आत्मा उस शरीर-रूप नहीं होता अपितु अपने-रूप की रहता है।

यह जीव राग-द्वेषादि भावों और शरीर को ही आत्मा माने हुए है। इसने अभी तक यह जाना ही नहीं कि इस पर-संयोगों के अलावा मेरा अपना स्वरूप क्या है ? अतः सबसे पहले तो यह जाने कि चीनी के मीठेपन की भाँति ही मेरा आत्मा सदा से ज्ञानदर्शन-रूप था, आज भी ज्ञानदर्शन-रूप है और सदा इसी रूप रहेगा तथा इनके विपरीत जो रागादि और शरीरादि हैं वे मेरे अपने नहीं हैं। बल्कि क्रमशः मेरे

Scanned by CamScanner

विकारी परिणाम और परसंयोग है। इस प्रकार मान्यता ठीक होने पर, जैसा अपनापन इसका अब तक रागादि और शरीरादि में था वैसा अपनापन अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में आए तथा रागादि और शरीरादि की मौजूदगी रहते हुए भी उनमें अपनापन न रह जाए, यही भेद-विज्ञान है। ऐसा होने पर, रागादि और शरीरादि में, अब तक जो ठहराव था, उसकी जगह अब अपने स्वरूप में ठहरे, उसका अनुभव करे, निज-रूप में तन्मय हो जाए, लीन हो जाए, तो अग्नि बुझ जाए और चीनी ठंडी हो जाये, अर्थात कर्म के संयोग का और रागादिक विकारी परिणामों का अभाव हो जाए, आत्मा शुद्ध हो जाए—उसके स्वाभाविक गुणों का पूर्ण विकास हो जाए।

चीनी के इस दृष्टान्त द्वारा हमें यह समझना है कि जिस प्रकार मीठापन और गर्मपना दोनों एक साथ में रह सकते हैं और गर्मपने के अभाव में भी मीठापना कायम रहता है, वह मिट नहीं सकता, उसी प्रकार हम संसारी जीवों में ज्ञाता-दृष्टापन और रागादिक साथ-साथ हैं और रागादि के अभाव में भी हमारे ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव का अभाव नहीं हो सकता। रागादिक को स्वभाव मानना छोड़कर यदि हम अपने ज्ञानदर्शन स्वभाव में अपनापन स्थापित करें और स्वभाव में ही ठहर जायें तो हमारे विकार का नाश हो जाए।

दृष्टान्त (चीनी) और दृष्टान्त (आत्मा) में एक महत्वपूर्ण अन्तर भी समझ लेना जरूरी है। चीनी तो एक जड़ पदार्थ है। उसे आग पर रखकर गर्म करें तो वह मना नहीं कर सकती—उसे तो गर्म होना ही पड़ेगा। परन्तु जीव एक चेतन तत्त्व है, स्वयं सामर्थ्यवान है और उसमें इच्छा की स्वतंत्रता है। यदि वह चाहे तो पूर्व संस्कार अथवा कर्म-रूपी अग्नि का अवलम्बन लेकर विकारी परिणाम करे अथवा अवलम्बन न लेते हुए जागरूक बना रहे। अवलम्बन लेना, न लेना, अथवा अपनी शक्ति के अनुसार कम-ज्यादा लेना, यह सब स्वयं जीव पर निर्भर करता है।

Scanned by CamScanner

अपनी चेतन-शक्ति को मत भूलना !

किसी समय एक तोता अपने गुरु के पास पढ़ता था। एक दिन उसने गुरु से कहा—गुरु जी ! मैं हरे-हरे खेतों के ऊपर उड़कर देखना चाहता हूँ। गुरु ने बहुत मना किया किन्तु तोता नहीं माना, अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। तब गुरु ने कहा—अगर तू जाना ही चाहता है तो जा, तेरी मर्जी ! लेकिन इतना याद रख कि खेतों पर ऊँचे-ऊँचे ही उड़ना, नीचे बिखरे हुए अनाज के दानों को देखकर मन न चलाना। और, यदि कदाचित् तेरा मन चल जाए तो भी नीचे मत उतरना। कदाचित् तू नीचे भी उतर जाए तो फिर नलिनी यन्त्र पर मत बैठ जाना। और कदाचित् तू नलिनी पर भी बैठ जाए तो उलटना मत। और यदि उलट भी जाए तो उसे छोड़कर उड़ जाना-यह कभी मत भूलना कि तू उड़ सकता है, कि तुझे उड़ने से कोई रोक नहीं सकता।

गुरु जी की सीख याद करके तोता उड़ चला। उड़ते-उड़ते जब वह खेतों के ऊपर पहुँचा तो उसे अनाज के सुंदर-सुंदर दाने दिखलाई पड़े। गुरु जी की दी हुई सीख वह भूल गया और दानों पर ललचाकर नीचे उतरने लगा। एक क्षण के लिए उसे गुरु जी के शब्द याद आए कि नलिनी पर नहीं बैठना है, तो भी उसे लगा कि वे सुंदर-सुंदर दाने उसे बुला ही रहे हैं, अतः वह नलिनी पर जा बैठा। उसका नलिनी पर बैठना था कि वह उलट गया। अब वह रोने लगा। -यह बात बिल्कुल भूल गया कि मुझमें उड़ने की शक्ति है, कि नलिनी ने मुझे नहीं पकड़ा है बल्कि मैंने ही उसे पकड़ रखा है, कि मैं उसको छोड़कर उड़ना चाहूँ तो अब भी उड़ सकता हूँ। नतीज़ा यह हुआ कि बहेलिये ने आकर तोते को पकड़ लिया और पिंजरे में बंद करके ले चला।

अब अपनी बात पर आते हैं। आचार्यों ने हमें बार-बार समझाया है कि हे जीव ! हे चेतन तत्त्व ! तू निज में, स्वयं में ही रहना। निज चैतन्य के बाहर मत जाना। कदाचित् तू बाहर जाए भी तो किसी पर-पदार्थ पर मन न चलाना। कदाचित् तेरा मन चल भी जाए तो पर-पदार्थ में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि मत करना। और कदाचित् किसी पदार्थ में इष्टानिष्ट बुद्धि भी कर बैठे तो उसमें अपनापना कदापि न

Scanned by CamScanner

मानना। कदाचित् तू यह सब भी कर बैठे तो भी यह न भूलना कि मैं एक अकेला चेतन द्रव्य हूँ; कि कोई भी अन्य पदार्थ, पर-पदार्थ मुझे अपने आधीन, पराधीन नहीं बना सकता; अपनी चेतनशक्ति को सदा याद रखना। अपनी स्वाधीनता को मत भूलना।

परन्तु हा ! आचार्यों के द्वारा इस प्रकार भली-भाँति सम्बोधित किये जाने पर भी हम तो स्वयं को भूलकर, अपनी चेतनशक्ति को भूलकर, अपने को शरीर-रूप, कर्मफल-रूप, कर्म के आधीन माने बैठे हैं। अत्यन्त खेद है कि यह जीव अज्ञानवश, अपने चैतन्य-तत्त्व का अहसास न होने से, कर्म के आधीन हुआ पड़ा है।

अपना सहारा !

कृष्ण भोजन करने बैठ हैं और रुक्मणि उन्हें पंखा झल रही हैं। अचानक कृष्ण थाली छोड़कर द्वार की तरफ भागे। किन्तु द्वार पर जाकर रुक गये और वापिस लौटकर भोजन करने बैठ गये। रुक्मणि ने पूछा, "आप भोजन करते-करते उठकर कैसे भागे और फिर वापस लौट आये, क्या प्रयोजन था ?" कृष्ण ने कहा, "मेरा एक भक्त शहर से जा रहा था, लोग उसे पत्थर मार रहे थे। उसके माथे से खून बह रहा था। उसके कपड़े लोगों ने फाड़ डाले थे। लोग उसे पत्थर मार रहे थे और वह गीत गा रहा था। इसलिए मैंने जरूरत समझी कि मैं जाऊँ, क्योंकि वह बिल्कुल बेसहारा था। परन्तु जब मैं द्वार तक पहुँचा तब तक उसने पत्थर उठा लिया था। इस प्रकार अब वह बेसहारा नहीं था। उसे अब मेरी कोई जरूरत नहीं रही। इसलिये मैं वापिस लौट आया।"

अब अपनी बात है। जब व्यक्ति बेसहारा हो जाता है उसी दिन उसे अपना सहारा मिल जाता है। हम लोग इतने कमजोर हैं कि कोई न कोई सहारा पकड़े रहते हैं। स्वतंत्र हुए बिना सत्य की उपलब्धि नहीं होती। इसीलिये, इसी प्रकार हमें मत का, सम्प्रदाय का सहारा छोड़ने पर अपना सहारा उपलब्ध होता है जिससे सत्य के पीछे खड़े हो सकें।

Scanned by CamScanner

विद्वान की अज्ञानता

संयोगवश किसी कुम्हार को रास्ते में कहीं एक हीरा पड़ा मिल गया। उसने यह सोचकर उठा लिया कि चमकदार, अच्छा-सा पत्थर है, बेटे के खेलने के काम आएगा। फिर उसने सोचा कि अपने गधे के गले में बाँध दूँ तो भला लगेगा, सो उसने उसमें डोरा पिरोकर गधे के गले में लटका दिया। किसी दिन जब वह कुम्हार अपने गधे पर घड़े लादकर बेचने के लिये हाट को जा रहा था तो कोई जौहरी सामने से आ रहा था। जौहरी की नजर ज्यों की गधे के आभूषण पर पड़ी, वह चौंक गया। उसने ऐसा नायाब हीरा वास्तव में पहले कभी न देखा था। उसने कुम्हार से पूछा—क्यों भाई ! इस पत्थर का क्या दाम लोगे ? कुम्हार कुछ सोचकर बोला—चलो, आठ आने दे दो। वह जौहरी भी महाकंजूस था, बोला—चार आने में दोगे ? इस पर कुम्हार ने कहा कि रहने दो, यह इसके गले में ही ठीक है।

जौहरी भी यह सोचकर आगे बढ़ गया कि अभी थोड़ी देर में अपने-आप चार आने में देने के लिये आवाज़ लगाएगा। कुम्हार अभी थोड़ी दूर ही गया था कि कोई दूसरा जौहरी भी संयोगवशात् उधर आ निकला। उसने कुम्हार को एक रुपया देकर वह पत्थर खरीद लिया। इतने में पहला जौहरी वापस लौटा, परन्तु सौदा हो चुका था, हीरा दूसरे जौहरी के हाथ में जा चुका था। निराशाजन्य क्रोध से वह कुम्हार से बोला—अरे मूर्ख ! तूने करोड़ो की चीज़ एक रुपये में बेच दी ! अब कुम्हार हँसने लगा, फिर बोला—चलो, मुझे तो पहचान नहीं थी, इसलिये उसे पत्थर समझकर एक रुपये में दे दिया। लेकिन तुम तो जौहरी थे, करोड़ों के हीरे के आठ आने भी नहीं दे सके ? असल में, जो गँवाया है सो तुम्हीं ने गँवाया है, मैंने नहीं गँवाया।

अब अपनी बात करते हैं। इस संसार में अधिकतर लोग अज्ञानी हैं, वे अपना हीरा-सा मनुष्य जन्म धन-सम्पत्ति के लिये, स्त्री-पुत्रादिक के लिये, मान-बड़ाई आदि के लिये गँवा रहे हैं—उनको तो ज्ञान नहीं है। परन्तु, उन्हें क्या कहें जिन्हें सत्यमार्ग के उपदेश का सुसंयोग भी

Scanned by CamScanner

मिला है, जिन्होंने शास्त्र कण्ठस्थ कर रखे हैं, जो रोज आत्मा और परमात्मा की बातें करते हैं, पूजा-पाठ आदि की औपचारिकताओं में भी लगे हुए हैं, किन्तु आत्म-हितकारी ध्यान के लिये प्रयत्नशील नहीं होते, उसकी सम्यक् चेष्टा नहीं करते। उनका जीवन भी क्या व्यर्थ ही नहीं जा रहा ? क्या उन्होंने हीरे-सी अनमोल इस मानव पर्याय की महत्ता को समझा है ?

तेरा कार्य तेरा—मेरा कार्य मेरा

एक बार एक जंगल में एक साधु बैठे थे। उनके पास उनका शिष्य बैठा हुआ था। उसी समय एक व्यक्ति आया और साधु को भला-बुरा कहने लगा। अंत में क्रोध में आकर उसने उन पर थूक दिया। साधु कुछ नहीं बोले। शिष्य ने कहा कि कैसा नीच था, जाते-जाते थूक भी गया। साधु ने कहा—जो काम वह सामने करके गया, वही काम तुम उसके पीछे से कर रहे हो, फर्क क्या है ? दूसरे रोज वह आदमी आया और माफी माँगने लगा। साधु ने कहा—"कल का कृत्य भी तुम्हारा था और आज का कृत्य भी तुम्हारा है। मेरा तो कुछ भी कृत्य नहीं है। कल का भी मेरा नहीं था, आज का भी मेरा नहीं है। तुम्हारे कृत्य के तुम्हीं मालिक हो। मेरा तो उससे कोई सम्बन्ध नहीं है।"

अब अपनी बात है। हम दूसरे के कृत्य को अपने साथ जोड़ लेते हैं। यह गलती हमारी हैं। अगर अपने साथ नहीं जोड़ें तो वह कृत्य उसी का है। किसी को कपड़ा खूंटी पर टांगना है, कपड़ा उसी का है। वह किसी भी चीज़ को खूंटी बना सकता है। किवाड़ पर कपड़े को टांग दे तो वह किवाड़ ही उसके लिए खूंटी बन जाता है। खूंटी उस कपड़े के साथ सम्बन्ध न जोड़े, तो कपड़ा टांग दें तब भी उसी का "जिस व्यक्ति ने कपड़ा टांगा है उसी का है, बुरा टांगा तब भी उसी का है। खूंटी का तो कपड़े से कोई सम्बन्ध नहीं है। साधु तो बीच में खूंटी का काम कर रहे थे। यह बात समझ में आ जाए तो क्रोधादि करने का कोई प्रयोजन नहीं रहे।

Scanned by CamScanner

राग और द्वेष की गोलियाँ

किसी मधुमक्खी की एक साधारण मक्खी से दोस्ती थी। वह मधुमक्खी किसी सरोवर में उगे कमल के फूलों पर बैठकर उनका रस पीती थी, जबकि साधारण मक्खी गंदगी, विष्ठा इत्यादि पर बैठा करती थी। मधुमक्खी जब भी अपनी मित्र उस दूसरी मक्खी से मिलती, तभी उसे बतलाती कि कमल-पुष्पों के रस का कैसा अपूर्व और अद्‌भुत स्वाद है। फिर उससे कहती-चल तू भी मेरे साथ चल न। एक बार तो ज़रूर चल, तुझे भी कमल का रस पिला कर लाऊँ। तूने अपने जीवन में ऐसा रस कभी चखा भी न होगा।

मधुमक्खी द्वारा इस प्रकार रोज़-रोज़ अनुरोध किये जाने पर दूसरी मक्खी भी एक दिन बोली कि चल, एक बार तो तेरे साथ चलती ही हूँ। वह चलने को राज़ी हुई लेकिन मन में सोचने लगी कि इसके साथ जाकर कहीं भूखों न मरना पड़े। ऐसा सोचकर उसने मधुमक्खी से कहा—मैं अभी तैयार होकर आती हूँ। फिर उसने छिपकर अपने दोनों नथुनों में विष्ठा की एक-एक गोली रख ली और मधुमक्खी के साथ चल पड़ी।

अपने साथ उस सरोवर में ले जाकर मधुमक्खी ने उसे कमल के एक फूल पर बैठाया और बोली कि अब तू निश्चित होकर इसका रसपान कर। फिर वह मधुमक्खी स्वयं भी कमल-पुष्पों का रस चूसने लगी। वह बीच-बीच में नवागन्तुक मक्खी से पूछती भी जाती थी कि अरी मित्र ! कितना बढ़िया स्वाद है ? कैसा आनंद आ रहा है ?

मधुमक्खी द्वारा इस प्रकार बार-बार प्रशंसा किये जाने पर, दूसरी मक्खी से नहीं रहा गया। वह बोली-तुम तो बिना वजह ही भाव-विभोर हुई जा रही हो, मुझे तो यहाँ भी वही विष्ठा का स्वाद आ रहा है। यह सुनकर मधुमक्खी पहले तो आश्चर्य में पड़ गई।

Scanned by CamScanner

फिर कुछ सोचकर उसने उस मक्खी को पकड़कर ध्यान से देखा तो पाया कि उसने तो अपने दोनों नथुनों में विष्ठा की गोली रखी हुई थी। अब उसने अपना माथा ठोक लिया।

अब अपनी बात करते हैं। क्या यही दशा हमारी भी नहीं हो रही ? आत्मा की कथनी सुनते हैं, आगम का अध्ययन करते हैं। भगवान् आचार्य आत्मा का कथन करते हुए कहते हैं—"स्वानुभव में कैसा अपूर्व आनन्द है ! हम उस आनन्द में मग्न हो रहे हैं। तुम भी हमारी तरह इस आत्म-तत्व का आनन्द लो। तुम चाहो तो अवश्य ले सकते हो। वह आत्म-स्वरूप आनन्द से परिपूर्ण है, लबालब भरा हुआ है।" परन्तु हम तो पाप-पुण्य की अथवा राग-द्वेष की गोलियाँ अपने अभिप्राय में दबाए हुए आगम सुनने को आते हैं और उन्हीं का स्वाद लेकर चले जाते हैं। आचार्यों के द्वारा बार-बार पूछे जाने पर यही पाते हैं कि हमें तो पहले जैसा ही स्वाद आ रहा है—जो कि वस्तुतः राग-द्वेष का ही स्वाद होता है जिसके हम सदा से अभ्यस्त हैं। अथवा पुण्य के उदय से प्राप्त सामग्री के सद्भाव में होने वाले इन्द्रियजनित सुख का ही हम सुख-रूप से अनुभव कर रहे होते हैं। इसके विपरीत, यदि अपनी बुद्धि को पूर्वाग्रहों से खाली करके तथा अपने अभिप्राय को निर्मल करके आएं और आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित आत्म-तत्व का निरूपण सुनकर निजात्म-स्वरूप का स्वाद लें तो वास्तविक आनन्द की प्राप्ति अवश्य हो।

★ यह जीव अति व्याकुल होकर सर्व विषयों को युगपत् ग्रहण करने हेतु व्यर्थ प्रयत्न करता है, तथा एक विषय को छोड़कर अन्य के ग्रहण हेतु यह जीव ऐसे व्यर्थ प्रयत्न करता है, किंतु फलस्वरूप क्या सिद्धि होती है ? जैसे मन की भूखवाले को कण मिला किंतु उससे क्या उसकी भूख मिटे ? वैसे सर्व ग्रहण की जिसे इच्छा है, उसे किसी एक विषय का ग्रहण होने पर इच्छा कैसे मिटे ? और इच्छा मिटे बग़ैर सुख भी नहीं होता, अतः यह सब उपाय मिथ्या है।

Scanned by CamScanner

वस्तुस्थिति को देखने की कला

एक बार की बात है, एक आदमी ने आकर कहा—मेरे पिता जी को कार से धक्का लग गया, वे गिर पड़े और उनके दो दाँत टूट गए। मैंने पूछा-उनके कितने दाँत थे ? वह बोला—बत्तीस दाँत होते हैं। मैंने पूछा—तब कितने बचे ? वह बोला—तीस बचे। मैंने कहा-कर्म ने बत्तीस दाँत दिये थे, उनमें से दो दाँत उसने वापस ले लिये, सो तीस दाँस फिर भी बच गए। कर्म अगर चाहता तो सब-के-सब वापस ले लेता, उसने तो सिर्फ दो ही लिये। इसलिये हमें तो उस कर्म का अनुग्रह मानना चाहिये कि वह मात्र दो ही ले गया, बाकी सब छोड़ गया। इसमें दुःखी होने की तो कोई बात ही नहीं है।

अब अपनी बात करते हैं। अपने ज्ञान-दर्शन स्वभाव के अलावा, जिस किसी पर-पदार्थ का भी सम्बन्ध हमारे साथ है—चाहे वह शरीर हो, जाति-कुल या मान-सम्मान हो, स्त्री-पुत्रादिक हों, धन-सम्पत्ति हो-सभी कर्म का कार्य है। कर्म ने अपनी चीज़ हमारे पास रख रखी है और कह गया है कि जब उसे जरूरत होगी वह अपनी चीज़ हमसे बिना पूछे बिना कोई एडवांस नोटिस दिये, वापस ले जाएगा। हाँ, इतना वह और कह गया है कि "जब तक मैं अपनी चीज़ वापस न ले जाऊँ, तब तक आप उसे अपने काम में ले सकते हो।" कर्मकृत सभी संयोग, जब वह रखकर गया तब भी उसी के हैं, और जब वह वापस ले गया तब भी उसी के हैं। कितना ले गया, इसका सवाल नहीं है। सवाल यह है कि कितना छोड़ गया-जितना छोड़ गया वह उसकी मेहरबानी है। उदाहरण के लिये, एक गिलास में आधा पानी भरा है। हम देख सकते हैं कि यह इतना खाली है। दूसरी ओर, हम यह भी देख सकते हैं कि यह इतना भरा हुआ है। दृष्टियाँ दोनों ही हमारी हैं। पहली दृष्टि से वस्तुस्थिति को देखने का विषाद होगा, जबकि दूसरी दृष्टि से देखने पर परिणामों में शान्ति रहेगी। वास्तविकता तो यही है कि बहिर्जगत् में हमारा अपना कुछ भी नहीं है।

Scanned by CamScanner

पुण्य और पाप

किसी समय की बात है कि एक शूद्र परिवार में दो पुत्र हुए। संयोग की बात कि उनमें से एक लड़के का पालन-पोषण किसी ब्राह्मण परिवार में हुआ, जबकि दूसरा लड़का अपने परिवार में ही पला-बढ़ा। इसलिये दूसरा लड़का तो स्वयं को शूद्र मानता ही था, किन्तु पहला लड़का—जो ब्राह्मण परिवार में पला था-वह अपने को ब्राह्मण ही मानने लगा। वास्तव में देखा जाए तो दोनों ही शूद्र हैं।

अब दृष्टान्त से दार्ष्टान्त पर आते हैं। आत्मा के परिणाम या भाव दो प्रकार के हैं—एक शुद्ध और दूसरे अशुद्ध। शुद्ध माने राग-द्वेष से रहित। अशुद्ध माने राग-द्वेष से युक्त। अशुद्ध परिणामों या भावों के फिर से दो भेद किये जाते हैं-एक शुभभाव, दूसरे अशुभभाव। यद्यपि करुणा, दया, दान आदि के भाव 'शुभ' की कोटि में आते हैं और संसार-शरीर-भोग विषयक भाव 'अशुभ' की कोटि में, तथापि परमार्थदृष्टि से तो अशुभ और शुभ दोनों ही प्रकार के भाव आत्मा के निजभाव या स्वभाव नहीं हैं, चूँकि ये दोनों की विकारी भाव हैं, दोनों ही 'शूद्रपुत्र' हैं—दोनों ही कषाय की पर्याय हैं। अन्तर केवल इतना है कि एक तीव्रकषायरूप है, जबकि दूसरा मन्दकषायरूप। उदाहरण के लिये, माना कि किसी को बुख़ार है। अगर उसे एक सौ चार डिग्री बुख़ार है, तब भी बीमारी मौजूद है। और अगर उसे सौ डिग्री बुख़ार है, तब भी बीमारी मौजूद है। बुख़ार की कमोबेशी की बनिस्बत भले ही दोनों में फर्क़ माना जाए, लेकिन बीमारी की मौजूदगी की अपेक्षा दोनों में कोई फर्क़ नहीं है। इसी प्रकार, चाहे अशुभ भाव हों या शुभ, यह स्पष्ट है कि राग-द्वेष रूपी बीमारी अभी नहीं मिटी है। निष्कर्ष यह है कि शुभभाव-जो कि हमारे विकारी भाव हैं-उन्हें धर्म न मानकर विकार ही मानना है, उसी तरह जैसे शरीर के स्तर पर हल्के बुख़ार को भी बीमारी ही माना जाता है, स्वास्थ्य नहीं। यदि विकार मानेंगे, तभी वे मिटेंगे। इसके विपरीत, शुभभावों को यदि धर्म मान लिया तो फिर उन्हें मेटने का पुरुषार्थ सम्भव ही नहीं हो सकेगा।

Scanned by CamScanner

नया संस्कार

दो आदमी किसी अखाड़े में कसरत करने के लिये गये। उनमें से एक ने तो शरीर पर तेल मालिश की हुई थी, जबकि दूसरे ने तेल आदि कोई चिकना पदार्थ नहीं लगा रखा था। दोनों ने अखाड़े की बहुत धूलियुक्त भूमि पर अनेक तरह से व्यायाम किया, मुगदर, गदा, भाला, फरसा इत्यादि नाना प्रकार के हथियार चलाये तथा पेड़-पौधों आदि को उखाड़ फेंका। व्यायाम पूरा होने के बाद देखा गया कि जिस आदमी ने तेलमर्दन किया हुआ था उसको तो मिट्टी खूब चिपक गई थी, जबकि दूसरे आदमी को-जिसने कोई स्निग्ध पदार्थ नहीं लगाया हुआ था-कुछ मिट्टी तो जरूर लगी, लेकिन चिपकी नहीं, झाड़ने से उतर गई।

धूलिबन्ध अर्थात् मिट्टी चिपकने का कारण वास्तव में क्या है, इस पर विचार करते हैं। दोनों आदमियों ने समान रूप से व्यायामादिक सभी क्रियाएँ की। मिट्टी चिपकने का कारण यदि अखाड़े की बहुत धूलियुक्त भूमि होती तो धूलिबन्ध दोनों के होना चाहिये था; तरह-तरह का व्यायाम करने से यदि धूलिबन्ध हुआ तो भी दोनों के होना चाहिये था; नाना प्रकार के शस्त्रों को चलाने से ही यदि मिट्टी चिपकी तो भी दोनों के चिपकनी चाहिये थी; इत्यादि। इस प्रकार, विश्लेषण से निश्चित हुआ कि उस आदमी के तेलमर्दन होना ही धूलिबन्ध का कारण है।

इसी प्रकार, कर्मवर्गणाओं रूपी धूलि से भरे हुए इस लोकरूपी अखाड़े में स्थित और काय-वचन-मन की नाना चेष्टाओं में रत इस जीव के कर्मरूपी रज से बँधने का वास्तविक कारण राग रूपी चिकनाई है। जिस जीव के जितना राग, जितना मोह, जितना ममत्व है, उसी के अनुपात में उसके कर्मबन्ध होता है। जिसके जितनी अधिक आसक्ति है, उसके उतना ही गहरा कर्मबन्ध होता है-उस जाति का नया संस्कार चेतना पर पड़ जाता है; अथवा यह कि वह समान जाति के पूर्व संस्कार को और भी पुष्ट कर देता है।

Scanned by CamScanner

सामान तो बचा लिया किन्तु मालिक मर गया !

एक मकान में आग लग रही थी। लोग सामान निकाल रहे थे। मालिक बाहर खड़ा रो रहा था कि थोड़ी देर में सब राख हो गया। लोगों ने अंतिम बार आकर पूछा कि कुछ बाकी तो नहीं रह गया है ! सब चीजें निकाल ली हैं न ? मालिक ने कहा—"मुझे कुछ याद नहीं आता; जो बचाया जा सके बचा लो।" लोग भीतर गये, वापिस आये तो मालिक के इकलौते बेटे के शव को लाए। लोग मकान का सामान बचाने में तो लग गये थे परन्तु मकान का एकमात्र मालिक जलकर मर गया था।

यही हमारी हालत है। हम सामान को, परिग्रह को तो बचा रहे हैं और भीतर में बैठा मालिक मर रहा है। पदार्थ में, वस्तु में, इतने लीन हैं कि अपने आप को भूल गये हैं; यही आत्मघात है। धन के लिए, शरीर के लिए, स्त्री-पुत्र के लिए, अनेक प्रकार की बेईमानी, झूठ, अन्याय करके उनको इकट्ठा करना चाहते हैं, उनको बचाना चाहते हैं। अपने आत्मतत्व की हत्या उन चीजों के लिए कर रहे हैं। यह विचार नहीं आता कि जो कार्य मैं कर रहा हूँ उसके द्वारा मेरे आत्म-स्वभाव का घात हो रहा है। जो चीज़ कायम नहीं रहने वाली है उसके लिए उसका घात कर रहा हूँ जो शाश्वत है।

★ यह शरीर मेरा नहीं, यह रूप मेरा नहीं, यह स्त्री मेरी नहीं ये पुत्र-भाई मेरे नहीं, ये सम्बन्धी मेरे नहीं-यह लक्ष्मी मेरी नहीं, यह मोह मात्र ही अज्ञानता है, सिद्ध गति साधने के लिए हे जीव ! अन्यत्व का बोध देने वाली अन्यत्व भावना का विचार कर ! विचार कर !

Scanned by CamScanner

कितने भव अवशिष्ट रहे ?

विपुलाचल पर भगवान् महावीर का समवसरण आया हुआ था। राजगृही के निवासी भगवान् के दर्शनों के लिये जा रहे थे। मार्ग में पड़ने वाले एक उपवन में उन्होंने किन्हीं मुनिराज को पलाश के एक पेड़ के नीचे सुस्थिर मुद्रा में ध्यानस्थ बैठे देखा। समवसरण में पहुँचकर उन लोगों ने भगवान् के दर्शन किये, पूजा-स्तुति की, फिर वे विनयपूर्वक मनुष्यों के कक्ष में बैठ गए। गौतम गणधर को नमस्कार करके उन्होंने उत्सुकतावश पूछा-हे भगवन् ! रास्ते में पड़े उपवन में ध्यानस्थ अवस्था में स्थित जिन मुनिराज के हमने दर्शन किये थे, उनके कितने भव बाकी है ? उत्कृष्ट अवधिज्ञान के धारक गणधरदेव बोले-हे भव्यों ! जिस वृक्ष के नीचे वे मुनि बैठे हैं, उसके जितने पत्ते हैं, उतने भव उनके अवशिष्ट हैं। यह सुनकर वे लोग बहुत हर्षित हुए क्योंकि पलाश याने ढाक के जिस पेड़ के नीचे उन्होंने मुनिराज को बैठे देखा था उस पर तो सिर्फ़ तीन ही पत्ते लगे हुए थे। वे तुरंत उन मुनिराज को यह खबर देने को चल पड़े। लगभग एक घड़ी का समय उन्हें मुनिराज के पास तक पहुँचने में लगा होगा। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पाया कि वे मुनि तो अब इमली के पेड़ के नीचे बैठे हुए हैं। नमस्कार करके वे सब मुनिराज के समक्ष बैठ गए। उनकी कुछ खिन्न मुखमुद्रा देखकर मुनिराज ने पूछा-क्या बात है ? उनमें से जो बुद्धिमान पुरुष था वह बोला-महाराज ! पहले आप बताने की कृपा करें कि इस पेड़ के नीचे आप कितनी देर से विराजमान हैं ? मुनि बोले कि यही कोई एक मुहूर्त (याने दो घड़ी का काल) बीता होगा, अन्यत्र सामायिक करके इस पेड़ के नीचे आ बैठा हूँ। उन लोगों के उत्साह पर अब पानी पड़ चुका था, अतः वे धीरे-धीरे सारी बात कहने लगे-हमने आपको उस पलाश के वृक्ष के नीचे बैठे देखा था जिस पर कुछेक ही पत्ते हैं। कोई एक घड़ी पहले हमारे प्रश्न करने पर गणधरदेव ने बतलाया कि आपके उतने ही भव बाकी हैं जितने कि उस वृक्ष के पत्ते जिसके तले आप बैठे हैं। सुनकर हम बहुत हर्षित हुए, किन्तु वापस लौटकर पाया कि आप तो इमली के वृक्ष तले बैठे हैं जिसके तो अनगिनत पत्ते हैं। यह देखकर ही हम सबका उत्साह भंग हो गया है।

Scanned by CamScanner

परन्तु आश्चर्य कि उन श्रावकों की बात सुनकर खेदखिन्न होने के बजाय मुनिराज तो प्रसन्न हो गए, कहने लगे-अनादिकाल से लेकर आज तक इस जीव ने जितने भव धारण किये हैं, वे अनन्त हैं। अब यदि इसने धर्म के यथार्थ स्वरूप को नहीं जाना तो भविष्यतकाल में भी इसे अनन्तों बार जन्म-मरण करने पड़ेंगे, जिनकी संख्या का कोई अंत ही नहीं है। इस पेड़ के पत्ते भले ही हमें अनगिनत लगें, किन्तु ये अनन्त तो नहीं हैं। अवधिज्ञानी के ज्ञान की अपेक्षा मेरे भवों की गिनती तो अब हो गई ! मेरे लिये इससे अधिक हर्ष की बात और क्या हो सकती है ?

अब अपनी बात करते हैं। वस्तुतः यह जीव अनादिकाल से जन्म-मरण ही करता आ रहा है और अनंतकाल तक जन्म-मरण ही करता रहेगा। किसी पर्याय में यदि यह जीव तत्वज्ञान की प्राप्ति का मौका पाकर सही-सम्यक् पुरुषार्थ करे और उसके फलस्वरूप सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले तो इसके अनंत संसार का परिभ्रमण कटकर ज्यादा-से-ज्यादा अर्धपुद्गलपरावर्तन मात्र काल रह जाता है। यद्यपि यह निश्चित है कि अर्धपुद्गलपरावर्तन काल में भी अनगिनत भव होते हैं, तथापि यह भी निश्चित है कि अब उसके संसार का अंत अवश्यम्भावी है। यदि सम्यग्दर्शन होने पर संयम धारण करके चारित्र के हेतु पुरुषार्थ करे तो साधना की तरतमता के अनुसार उत्कृष्टतया तीसरे भव में भी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। विशेष रूप से मनुष्यभव में तत्वज्ञान का स्वर्ण अवसर इस जीव को मिलता है, परन्तु विषय-भोगों की चाह में ही पड़ा रहकर यह उस मौके से कुछ भी लाभ नहीं उठा पाता-अपना अमूल्य जीवन विषय-भोगों रूपी कौड़ियों की आस में ही खो देता है। फलतः इसका जन्म-मरण का चक्कर पूर्ववत् चालू रहता है।

चैतन्य का स्मरण प्रतिक्षण करो रे,
भव के अनन्त दुःख को क्षण में हरो रे।
अक्षय अनन्त सौख्य निधान पाओ,
गाओ अरे नित इसी के गीत गाओ।

Scanned by CamScanner

दोनों एक ही नाव के सवार

किसी धनिक आदमी की एक बूढ़ी माँ थी। उसने अपने बेटे से कहा-तुम हमेशा लाखों की बातें करते हो लेकिन मैंने आज तक कभी लाख रुपये इकट्ठे नहीं देखे। बेटा बोला-इसमें क्या ख़ास बात है ? उसने लाख रुपये लाकर एक चबूतरा-सा बनाया और अपनी माँ को उस पर बैठा दिया। माँ को धन के उस ढेर पर बैठाकर धनिक ने जब उसकी इच्छा पूरी कर दी, तब उसके मन में विचार आया कि इन रुपयों को अब दान कर देना चाहिए। इसलिये उसने एक ब्राह्मण को बुलवाया और उसे वह धन दान करने लगा। परन्तु तभी उसके मन में अहम्भाव आया। वह ब्राह्मण से बोला—दातार तो तुमने बहुत-से देखे होंगे, लेकिन मुझ-सा दातार न देखा होगा जो लाख रुपयों का ढेर लगाकर दे रहा है। वह ब्राह्मण भी बड़ी त्यागवृत्ति का था, बड़ा विनम्र व्यक्ति था। उसका भी स्वाभिमान् जागा, उसने अपनी जेब से एक रुपया निकाला और उस ढेर पर फेंककर बोला-तुमने भी मुझ जैसा ब्राह्मण नहीं देखा होगा जो लाख रुपये तो छोड़ता ही है, एक रुपया अपनी तरफ़ से और डाल देता है।

वह धनिक और वह ब्राह्मण, दोनों वस्तुतः एक ही कोटि के व्यक्ति हैं-दोनों में कुछ अंतर नहीं है। दोनों अहंकारी हैं-लौकिक भाषा में भी पहले को तो 'अहंकारी' ही कहते हैं, जबकि दूसरे को 'स्वाभिमानी'। परमार्थतः दोनों में कोई अंतर नहीं हैं। पहले को धन-सम्पत्ति आदि के परिग्रहण का अहंकार है तो दूसरे को त्याग का अहंकार है। अहम् का रस केवल भोगों और परिग्रह में ही नहीं आता, त्याग में भी आता है। अतः ग्रहण को त्याग में बदलने मात्र से हमारा कार्य नहीं बनेगा-असल में रूपान्तरण तो हमें स्वयं का करना है, अपने अंतरंग का करना है। रूपान्तरित उसको करना है जो हर चीज़ को अहंकार में बदल देता है, वासना में बदल देता है, बेहोशी में बदल देता है। और, यह तभी संभव है जब हम अपने को पहचानें, अपने वास्तविक स्वरूप का निर्णय करें। तब हम संसार में रहते हुए भी संसार हमारे भीतर नहीं रहेगा। यह जो 'पर' के ग्रहण और त्याग का अहंकार है, यही संसार है।

Scanned by CamScanner

आत्मा सदा उपवासी है

यमुना के पार एक साधु आए। बरसात के दिन थे, यमुना में पानी चढ़ा हुआ था। नावें तक नहीं चल रही थीं। कृष्ण ने रुक्मिणी को कहा कि जाकर साधु को भोजन करा आओ। उसने पूछा-कैसे जाना होगा, यमुना में तो पानी चढ़ा हुआ है ? कृष्ण ने कहा-तुम जाकर यमुना से कहना कि यदि मुनि सदा के उपवासे हैं तो वह राह दे दे। रुक्मिणी ने सहर्ष भोजनादि हेतु सब व्यवस्था की और फिर कृष्ण के निर्देशानुसार जाकर यमुना से कहा कि यदि मुनि सदा के उपवासे हैं तो मार्ग दे दो।

कहानी कहती है कि उक्त प्रकार से कहने पर यमुना ने राह दे दी। रुक्मिणी ने विधिपूर्वक साधु को भोजन कराया। लौटने के समय, यह सोचकर वह घबराई कि अब वापस कैसे जाना होगा, अब तो साधु ने भोजन कर लिया है, अब नदी रास्ता भला क्यों देगी। रुक्मिणी को चिन्तित देख साधु ने पूछा-क्या बात है? रुक्मिणी ने उन्हें सारी बात बताई कि आते समय हमने इस सूत्र का उपयोग किया था और कहने लगी-अब वह व्यर्थ हो गया, अब वापस कैसे जांए ? साधु बोले-तुम पुनः उसी सूत्र का उपयोग करो, नदी राह दे देगी। मेरे भोजन करने या न करने से मेरे उपवासीपने में कोई अन्तर नहीं पड़ता। रुक्मिणी क्या करती, उसके पास और कोई उपाय भी तो न था, उसने नदी के पास जाकर डरते-डरते पुनः वैसे ही अनुनय की, और वह आश्चर्यचकित रह गई जब नदी ने फिर से राह दे दी।

कहानी बताती है कि आत्मा सदा की उपवासी है, उसको भोजन नहीं चाहिये; वह मरणधर्मा नहीं है, वह तो अमृतरूप है-सदा से है, और सदा रहेगी। जिसको भोजन की ज़रूरत है वह शरीर है; भोजन न मिलने पर वह मरने लगेगा। उपवास करने वाला व्यक्ति पहले यह जानेगा कि भूख शरीर को है, आत्मा को नहीं। वह आत्मा की तृप्ति के लिये भोजन नहीं करता। वह शरीर और आत्मा, दोनों के भिन्न-भिन्न धर्मो को भिन्न-भिन्न ही जानेगा। आत्मा के धर्म को इस प्रकार जानने वाले की आत्मा कभी भोजन नहीं करती, वह तो

Scanned by CamScanner

उपवासी ही है। भोजन भी है, खाने वाला भी है, परन्तु वह तो दोनों का मात्र द्रष्टा है; और द्रष्टा भोजन नहीं करता, वह तो सदा उपवासा ही है।

अब अपनी बात करते हैं। क्या हमारा जीवन भी ऐसा हो सकता है ? निस्सन्देह हो सकता है यदि हमारी दृष्टि न भोजन पर हो, न शरीर पर हो, न खाने की क्रिया पर हो, अपितु मात्र एक ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी चैतन्य पर हो।

त्यागी कौन ?

बंगाल में एक योगी हुए। एक धनिक आदमी उनके पास आया, और कहने लगा आप महान त्यागी हैं। योगी हंसने लगें, और अपने शिष्यों से बोले कि यह आदमी आप ही महान त्यागी हैं। मुझे त्यागी बतला रहा हैं। वह आदमी चौंका, क्योंकि उसने तो प्रशंसा की थी। और शिष्य भी अचम्भे में पड़ गये, क्योंकि योगी वास्तव में त्यागी थे। शिष्यों ने कहा कि हम लोग समझते हैं, कि वह आदमी ठीक ही कह रहा हैं। योगी ने कहा कि इस तरफ से समझों कि हीरा पड़ा है। और पत्थर पड़ा हैं, जो आदमी हीरा छोड़ दे वह त्यागी हैं कि नहीं ? मैं तो हीरा पकड़े हुए हूँ।

अब अपनी बात हैं। कि संसारी सबसे बड़ा त्यागी हैं। उसने सुख को छोड़ दिया और कूड़े-कचरे को ग्रहण कर रखाा हैं। परन्तु संसारी साधुओं को त्यागी समझते हैं। कहते हैं, कि उन्होंने सब छोड़ दिया। कुछ भोगा भी नहीं। सम्मान भी करते हैं। और भीतर मन में दया भी रखते हैं। उनको पता नहीं कि साधु को महाभोग उपलब्ध होता है। भगवान महावीर तुच्छ भोग का त्याग कर अनन्त भोग को प्राप्त हो गयें। अनन्त काल तक अपने स्वभाव का निरन्तर भोग करते रहेंगे। उन जैसे भोगी कौन होगा।

Scanned by CamScanner

स्वर्ग से नारद

एक बार नारद स्वर्ग में गया। उसने वहाँ देखा कि कृष्ण अकेले बैठे हैं और कोई नहीं हैं। नारद ने कहा कि हे भगवान ! मृत्युलोक में तो रहने को भी जगह नहीं है, झुग्गी झोपड़ियों में जगह नहीं मिलती और आप स्वर्ग में अकेले बैठे हैं। भगवान ने कहा कि यहाँ पर कोई आने को भी तैयार नहीं है; अगर आपको कोई यहाँ आने के लिये मिल जाये तो लेते आईये। चाहे कितने ही व्यक्ति क्यों न हो।

नारद बहुत खुश हुआ और खुशी-खुशी मृत्युलोक में आया और बनारस में पहुँचा। वहाँ सवेरे-सवेरे लोग गंगा स्नान करने जा रहे थे। भगवान का नाम लेते जाते थे। नारद एक आदमी के पास पहुँचा और धीरे से बोला कि आप स्वर्ग चलोगे ? वह आदमी गुस्से में आकर बोला कि स्वर्ग तू अपने बाप को भेज, मेरे तो बाल बच्चे हैं। नारद और कई लोंगों के, साधु सन्तों के भी पास गया, परन्तु नारद की सभी जगह पिटाई हुई। कोई स्वर्ग जाने को तैयार नहीं था। अन्त में एक बूढ़े आदमी से नारद ने कहा आपकी उम्र तो बहुत हो गई है, स्वर्ग चलेंगे ? उसने कहा कि भाई दो साल बाद आना अभी मैंने अपने लड़कों का विवाह किया है, उनके पुत्र आदि हो जाये तो फिर चलूँगा। नारद ने सोचा चलों एक आदमी तो मिला। दो साल बाद नारद उसके पास पहुँचा तो देखा कि उससे चलाफिरा नहीं जाता। लड़के खाने-पीने कि भी परवाह नहीं करते। नारद ने कहाँ अब चलेंगे ? उसने कहा कि अभी पौते छोटे हैं। सँभाल रखता हूँ, कुछ बड़े हो जाये तो चलूँगा। कुछ दिन बाद नारद आया तो पता लगा कि वह आदमी मर गया है, और मरकर अपने घर के बाहर कुत्ता हुआ हैं। नारद उस कुत्ते के पास पहुँचा और कहा कि अब क्या विचार हैं, उसने कहा कि घर के बाहर बैठा पहरा दे रहा हूँ, बच्चे अभी छोटे हैं। बड़ा लड़का आया और उसने एक लाठी मारी। वह कुत्ता हाय-हाय

Scanned by CamScanner

करने लगा। नारद ने कहा यह हालत हैं, अब भी नहीं चलते। उसने कहा कि लड़का मुझे अपना बाप नहीं मानता, परन्तु मैं तो उसको अपना बेटा मानता ही हूँ मुझे तो उसकी सँभाल रखनी है।

अब अपनी बात है। क्या यह हालत हमारी नहीं हैं ! बेईमानी अन्याय करके अपना पेट काटकर बच्चों के लिये पैसा इकट्ठा करते हैं। जब वह बड़े हो जाते हैं, तब वह खाने को भी नहीं पूछते। जानते हैं कि मरने के बाद इनका और हमारी चेतना का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, फिर भी अनेक उपाय करके अपने लड़कों का ही नहीं उनके लड़कों बच्चों तक के लिये इन्तजाम करके जाने की चेष्टा करते हैं। जो समय आत्मकल्याण में लगाना था। वह उनकी देख-रेख में लगाते हैं। चौबीसों घन्टें उनकी चिन्ता और विकल्प करते-करते पर्याय पूरी कर देते हैं। और अपने लिये अनन्त संसार को तैयार कर लेते हैं।

अपने को न भूलना

एक बार वर्णी जी नालन्दा देखने को गये। वहाँ पुराने जमाने का विश्व विद्यालय रहा हुआ हैं। अनेक प्राचीन चीजें वहाँ उपलब्ध हुई हैं। उनको दिखाने के लिये एक गाइड मिल गया। वह साथ-साथ जाता था, और हरएक चीज के बारे में उसका पूरा इतिहास बताता था, यह क्या चीज हैं, कब बनी थीं, या काम आती थी, पूरी बातें समझाता जाता था। सब बाते बताने के बाद वह जो उंगली ऊपर करता था, उसी उंगली को अपनी ओर कर देता था। इस प्रकार सब जगह घुमाकर सभी चीजों की जानकारी देकर वह उन्हें वापस लाया, परन्तु अपनी तरफ उंगली करना नहीं भूलता था। यानी उसका बताना था, कि आप मेरे को न भूल जाये। मेरे को दिखाने का इनाम देना हैं।

अब अपनी बात हैं, कि संसार में सब जगह जावें, सब चीजों को देखें, सबके बारें में जानकारी भी करें, परन्तु अपने को न भूलें, तो यह दुनिया अथवा दुनिया की शान शौकत हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकेगी। वह संसार में तो हैं, परन्तु संसार उसके भीतर नहीं हैं।

Scanned by CamScanner

दूसरे का नाम मिटाकर अपना लिखा।

भरत जिसके नाम पर भारतवर्ष नाम पड़ा, चक्रवर्ती सम्राट था अर्थात् सारी पृथ्वी का मालिक था, जो चक्रवर्ती बनता था, उसे एक पर्वत पर अपना नाम लिखकर आना होता था। यह बहुत बड़ा सौभाग्य था जो लाखों वर्षों के बाद किसी एक को मिलता था। यह पर्वत कहा जाता है, कि संसार का सबसे बड़ा पर्वत था। भरत नाम लिखने के लिये वहाँ पहुँचा। नाम खोदने का सामान साथ लेकर गया, परन्तु वहाँ जाकर देखा कि इतने बड़े महान पर्वत पर एक तिल मात्र ही जगह खाली नहीं थी। समूचा पहाड़ और उनकी उप चोटियों पर भी जगह तक नहीं बची थी। उसने सोचा था, कि मेरे जैसा लाखों वर्षों में कोई एक होता हैं। उसको मालूम नहीं था, कि उस जैसे भी संसार में अनन्तों हो गये हैं, और मेरे को अपना नाम खोदने के लिये दूसरे का नाम मिटाकर जगह करनी होगी। भरत ने कहा कि मैं दूसरे का नाम मिटाकर अपना नाम लिखूगाँ, और कोई दूसरा आयेगा वह मेरा नाम मिटाकर अपना नाम लिखेगा। यह बात व्यर्थ हो गयी, मैं भूल में था, जब नाम मिटाकर नाम लिखना पड़ता हैं, तब तो पागलपन हैं।

अब अपनी बात हैं। लोग मंदिरों पर, पत्थरों पर नाम लिखवाते हैं। स्मारक बनाते है। नाम हैं बाहर के जगत को दिखाने वाला और मैं हैं, भीतर की तरफ से दिखने वाला। मैं और नाम दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आत्मा का तो कोई नाम नहीं है। कोई नाम लेकर यहाँ आया नहीं हैं। यहाँ का नाम यही छोड़ जावेंगा। वह साथ जा नहीं सकता। यहाँ अनन्तों जीव पैदा हो गये और मर गये, पर किसी का नाम निशान रहा नहीं। तू भी अपना नाम लिखाकर अपने अहम् को पुष्ट कर लें पर वह नाम कुछ वर्ष बाद तेरे परिवार वाले भी भूल जायेगे। तू तो रहेगा ही नहीं। कहीं-कहीं तीर्थों में एक-एक सीढ़ी पर नाम लिखा हुआ होता हैं। लोग जूता तेरे नाम पर रखकर ऊपर जाते हैं। दान मांगने वाले भी दान का पैसा निकलवाने की तरकीब जानते हैं। वे दान लेते समय यह आश्वासन देते हैं, कि

Scanned by CamScanner

दूसरे का नाम मिटाकर अपना लिखा।

भरत जिसके नाम पर भारतवर्ष नाम पड़ा, चक्रवर्ती सम्राट था अर्थात् सारी पृथ्वी का मालिक था, जो चक्रवर्ती बनता था, उसे एक पर्वत पर अपना नाम लिखकर आना होता था। यह बहुत बड़ा सौभाग्य था जो लाखों वर्षों के बाद किसी एक को मिलता था। यह पर्वत कहा जाता है, कि संसार का सबसे बड़ा पर्वत था। भरत नाम लिखने के लिये वहाँ पहुँचा। नाम खोदने का सामान साथ लेकर गया, परन्तु वहाँ जाकर देखा कि इतने बड़े महान पर्वत पर एक तिल मात्र ही जगह खाली नहीं थी। समूचा पहाड़ और उनकी उप चोटियों पर भी जगह तक नहीं बची थी। उसने सोचा था, कि मेरे जैसा लाखों वर्षों में कोई एक होता हैं। उसको मालूम नहीं था, कि उस जैसे भी संसार में अनन्तों हो गये हैं, और मेरे को अपना नाम खोदने के लिये दूसरे का नाम मिटाकर जगह करनी होगी। भरत ने कहा कि मैं दूसरे का नाम मिटाकर अपना नाम लिखूगाँ, और कोई दूसरा आयेगा वह मेरा नाम मिटाकर अपना नाम लिखेगा। यह बात व्यर्थ हो गयी, मैं भूल में था, जब नाम मिटाकर नाम लिखना पड़ता हैं, तब तो पागलपन हैं।

अब अपनी बात हैं। लोग मंदिरों पर, पत्थरों पर नाम लिखवाते हैं। स्मारक बनाते है। नाम हैं बाहर के जगत को दिखाने वाला और मैं हैं, भीतर की तरफ से दिखने वाला। मैं और नाम दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आत्मा का तो कोई नाम नहीं है। कोई नाम लेकर यहाँ आया नहीं हैं। यहाँ का नाम यही छोड़ जावेंगा। वह साथ जा नहीं सकता। यहाँ अनन्तों जीव पैदा हो गये और मर गये, पर किसी का नाम निशान रहा नहीं। तू भी अपना नाम लिखाकर अपने अहम् को पुष्ट कर लें पर वह नाम कुछ वर्ष बाद तेरे परिवार वाले भी भूल जायेगे। तू तो रहेगा ही नहीं। कहीं-कहीं तीर्थों में एक-एक सीढ़ी पर नाम लिखा हुआ होता हैं। लोग जूता तेरे नाम पर रखकर ऊपर जाते हैं। दान मांगने वाले भी दान का पैसा निकलवाने की तरकीब जानते हैं। वे दान लेते समय यह आश्वासन देते हैं, कि

Scanned by CamScanner

आपका, आपके बाप का, आपकी पत्नी का, आपके पुत्रों का सबका नाम इस जगह पर लिखा जायेगा। तब दान की रकम बढ़ जाती हैं। यह हैं अहम्। उसका फल हैं, अनन्त जन्म-मरण। यह दान लेने वाले ने नहीं बताया।

अपने में देखें

एक राजधानी में एक फकीर भीख मांगता था। वह एक ही जगह बैठकर तीस वर्ष से भीख मांगता था। एक रोज वह मर गया। उसके चारों तरफ की जमीन गन्दी हो गई थी, इसलिये जब लोग उसे लेकर जाने लगे तो जहाँ वह बैठता था, वहाँ चारों तरफ की जमीन खोदीं गई। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। हजारों आदमी वहाँ इकट्ठा हो गये। वहाँ जमीन के नीचे धन गड़ा हुआ था, बहुत खजानें भरे हुए थे। उस भिखारी ने सब जगह हाथ फैलाया, परन्तु अपने नीचे खोंदकर नहीं देखा। लोगों ने कहाँ भिखारी पागल था।

अब अपनी बात हैं, कि हम भी धन के पीछे दौंड लगा रहे हैं। जैसे रेस में घोड़े दौड़ते हैं और हम सोचते हैं, कि मेरा घोड़ा पीछे न रह जायें, वैसे धन के, मान के प्यासे चौबीस घन्टे दौड़ रहे हैं, कि मैं सबसे आगे निकल जाँऊ परन्तु अपने भीतर झांक कर देखें तो तीन लोक का नाथ अपना चैतन्य प्रभु अपने में ही विराजमान हैं। कहीं बाहर में खोजने की जरूरत ही नहीं हैं। अनन्त काल बाहर में, मन्दिर में, तीर्थों में, सब जगह खोजा, परन्तु अपने अन्तर में झांक कर देख लें तो कहीं खोजना नहीं पड़ता, क्योंकि जहाँ था वहाँ हमने खोजा ही नहीं।

★ पर के अवलम्बन में अटक करके 'धर्म मानना', सो तो मिथ्यादृष्टि का काम है।

Scanned by CamScanner

छप्पर पर ऊँट

एक धनिक व्यक्ति अपने घर में सो रहा था। रात्रि बारह बजे का समय था। बाहर में गाय, भैंसों को बांधने का छप्पर पड़ा हुआ था। अचानक उसकी नींद खुल गयी। उसने देखा कि छप्पर पर कोई घूम रहा हैं। उसने आवाज लगाई कि छप्पर पर कौन हैं। ऊपर से आवाज आईं कि मेरा ऊँट खो गया, उसे छप्पर पर ढूँढ रहा हूँ। उस धनिक व्यक्ति ने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात हैं, कि कहीं खोया हुआ ऊँट भी छप्पर पर मिल सकता हैं। ऐसा लगता हैं, कि तुम बहुत बड़े मूर्ख हों। उधर से आवाज आई कि तुम से ज्यादा तो मूर्ख नहीं हूँ। कदाचित् ऊँट तो छप्पर पर मिल भी जाये, नहीं तो छप्पर के नीचे मिल जायेगा परन्तु पाँच इन्द्रियों के विषय भोगों में धन, स्त्री, पुत्र आदि मकान महलों में जहाँ तुम सुख खोज रहे हो, वहाँ तो वह कभी भी नहीं मिल सकता। अपनी मूर्खता क्यों नहीं देखते ?

अब अपनी बात हैं, जन्म-जन्म में यह जीव हर पर्याय में सुख खोज रहा हैं। सवेरे से शाम तक इसी के पीछे लगा हुआ है। पूरा जीवन इसी की खोज में बीत जाता हैं। और अन्त में मर जाता है। ऐसी दशा धनिक, गरीब सभी की हैं। जितनी इच्छा की पूर्ति की चेष्टा करता हैं; उतनी इच्छा और ज्यादा उत्पन्न होती जाती हैं। एक ही सही रास्ता हैं कि ऐसा उपाय करना कि इच्छा उत्पन्न ही न हो जो अपने को चेतन रूप अनुभव करने ही से हो सकता है। दूसरा सही रास्ता नहीं हैं, परन्तु इसको यही सरल मालूम देता हैं, इसलिये सब प्रकार से इच्छा की पूर्ति की चेष्टा करता हैं; अनेक प्रकार की इच्छाओं में कोई एक आध पूरी होती हैं, उसकी जगह सैंकड़ों नई उत्पन्न हो जाती हैं। और इसी प्रकार से परिग्रह की दौंड़ में जीवन बीत जाता हैं, यह तो दाद की ख़ाज हैं। जितनी खुजाओगे उतनी ही जलन बढ़ेगी, परन्तु खुजाय बिना नहीं रहा जाता। यह जिसको हमने सुख कहा है, वह तो दाद की ख़ाज हैं। सुख तो वहाँ होता है, जहाँ दाद ही न रहें। इस दाद के मेटने का उपाय हम नहीं कर करते। इसका उपाय तो एक ही हैं वह अपने को अपनी आत्मा को सबसे अलग देखना हैं।

Scanned by CamScanner

धर्म का शिखर या अधर्म का शिखर

एक सेठ ने अपने विवाह के पच्चीस साल पूरा होने पर एक पार्टी दी। जिसमें सभी बड़े-बड़े व्यापारी और प्रतिष्ठित लोग आये थे। इसलिये उस सेठ की खुशी का ठिकाना नहीं था। सभी सेठजी को मुबारकबाद दे रहे थे, और उनकी प्रंशसा चल रही थी। वेटर वगैरहा अपने काम में लगे थे। एक वेटर के हाथ से सेठजी के पैर पर एक गर्म सामान से भरी प्लेट गिर गई, परन्तु सेठजी ने बहुत शान्ति रखी। और वेटर को कुछ भी भला बुरा नहीं कहा। बल्कि कहा कि मैं तुमको माफ करता हूँ, कपड़े गन्दे हो गये, वह मैं बदल लेता हूँ। सारे मेहमान देखते रह गये, उनकी आँखों में सेठजी के लिये प्रंशसा भरी हुई थी और सेठजी भी अपने आप को महान अनुभव कर रहे थे। अब सेठजी पृथ्वी पर नहीं थे, आकाश को छू रहे थे।

पार्टी खत्म हो गई। सेठजी अपने कमरे में आये और उस वेटर को बुलाकर उसे जो कुछ गाली गलौंच देना था, वह दिया और उसके वेतन में से कपड़ें धुलाने के लिये पैसे काट लिये।

अब अपनी बात हैं। जहाँ अपना 'मैं' पुष्ट होता हैं। वहाँ यह आदमी धार्मिक बन जाता है, दातार बन जाता है। आज धर्मात्मापना मात्र अपने अहंकार को पुष्ट करने के लिये हैं, हम एक पैसे में दो मजा लेते हैं, एक तरफ धर्मात्मा कहलाते हैं, और दूसरी तरफ अपने अहंकार को पुष्ट करते हैं। अगर हम अपने भीतर झांककर देखें तो लगेगा कि हम जो कुछ करते हैं, वह मात्र अपने अहंकार की पुष्टि के लिये ही करते हैं, चाहें वह धार्मिक कार्य हो या सामाजिक कार्य हो, देश सेवा का कार्य हो अथवा बाढ़ से पीड़ित व्यक्तियों की व्यवस्था हो। एक फोटोग्राफर साथ रहता है, जिसका कार्य हैं समय-समय पर भीड़ के साथ उनका फोटो लेना। पूजा कर रहें हैं तब भी दृष्टि फोटोग्राफर है विचारणीय हैं, कि अधार्मिक कार्य कौन सा हैं ? धर्म का शिखर भी अहंकार हैं, तो अधर्म का शिखर क्या हैं ?

Scanned by CamScanner

भगवान की वाणी

एक साधारण व्यक्ति था। वह प्राकृत से हिन्दी में अनुवाद करना चाहता था। इसके लिये उसने बड़ी मेहनत करके घर-घर घूमकर दस हजार रुपये इकट्ठा किया। अब अनुवाद हेतु पंडित को लाना था। पर अचानक देश में अकाल पड़ गया, और उस व्यक्ति ने औरो को मना करने पर भी समूचा पैंसा अकालग्रस्त लोगों की जरूरत की पूर्ति में लगा दिया।

इसके बाद उसने पुनः मेहनत करके पैसा इकट्ठा किया बहुत समय लग गया। फिर अनुवाद छपवाने की चेष्टा की, परन्तु उस समय बाढ़ आ गई, और उसने वह पैसा बाढ़ पीड़ित लोगों को दे दिया।

तीसरे बार उसने बड़ी मेहनत करके रुपया इकट्ठा किया और अब ग्रन्थ का अनुवाद करवा कर छपवा दिया। परन्तु उसने उस पर लिखवाया कि यह तीसरा संस्करण हैं। लोगों ने पूछा कि इसके पहले के दो संस्करण कहाँ हैं ? उसने कहा कि पहला संस्करण जब अकाल पड़ा तब निकाला था पर वह भगवान की वाणी की तरह निरक्षरी था जो समझ सकते थे, वह ही समझ सके। दूसरा संस्करण जब बाढ़ आई तब निकाला था। वह भी निरक्षरी वाणी थी। बात तो उसी ग्रन्थ की थी परन्तु अक्षर रूप नहीं थी। जो समझदार थे, वे ही समझ सकें। यह तीसरा संस्करण हैं सो साक्षर हैं, और इसको कोई भी पढ़ सकता हैं। पहले वाले दो वहीं पढ़ सकते हैं, जिनके पास ज्ञान नेत्र हैं।

अब अपनी बात हैं। एक आदमी ग्रन्थों का सार अपने जीवन में उतारता हैं। जीवन को बदली करता हैं, वह अपने जीवन में ही उस तत्व को निरन्तर देखता हैं। एक व्यक्ति ग्रन्थों में तत्व खोजता हैं। वहाँ तत्व के प्रति जानकारी ही मिलेगी। तत्व तो अपने जीवन में ही देखना होगा, जो ग्रन्थ के तत्व को ही तत्व समझता हैं, वह पंडित तो हो सकता हैं। परन्तु तत्वज्ञानी नहीं हो सकता हैं।

Scanned by CamScanner

अहंकार बनाम परोपकार

एक राजा था। वह बूढ़ा हो गया। उसके तीन पुत्र थे। वह सोच रहा था कि राज्य किसको दिया जायें। उनकी परीक्षा करने के लिये उसने अपने लड़कों को कहा कि पिछले साल में तुमने जो सबसे अच्छा काम किया है, वह मुझे तुम अलग-अलग बताओ। बड़ें लड़के ने कहाँ कि गाँव का सबसे बड़ा धनपति यात्रा को गया उसने करोड़ों रुपये के हीरे-जवाहरात मुझे बिना गिनें दे दिये। अगर मैं चाहता तो पूरे खा जाता, कुछ लिखा-पढ़ी तो थी ही नहीं परन्तु मैंने उसके आने पर सब सामान वैसा का वैसा लौंटा दिया। पिता ने कहाँ कि अगर तू कुछ बचा लेता तो तेरे भीतर जीवन भर के लिये ग्लानि-पश्चाताप का भाव रहता। वह भाव तेरे जीवन को दुखी बना देता। मरने के समय तू उस बात को याद करके कि मैंने एक ऐसे आदमी के साथ विश्वाघात किया हैं, जिसने मेरा इतना बड़ा विश्वास किया था। सुखः से मर भी नहीं सकता था। ऐसा करके तूने उस पर कोई उपकार नहीं किया, परन्तु तूने अपनी ही दुखः से रक्षा की हैं। यह परोपकार नहीं है।

दूसरे बेटे से अपनी बात कही, कि शाम के समय एक आदमी झील में डूब रहा था, वहाँ कोई नहीं था, मैं उसकी चिल्लाहट पर ध्यान न देकर चला जाता, परन्तु मैंने झील में कूदकर उसको निकाला और उसकी जान बचाई।

पिता ने कहाँ तुमने अच्छा किया, परन्तु अगर तुम उसे नहीं बचाते तो उस आदमी की मृत्यु सदा तुम्हारा पीछा करती, उसका प्रेतं सदा-सदा तुम्हारा पीछा करता कि तुम मनुष्य नहीं हो। तुम पशु से भी गये गुजरे हो। उस ग्लानि से बचने के लिये तुमने अपनी जान खतरे में डाली। परन्तु परोपकार तुमने किया इस भ्रान्ति में मत पड़ना।

तीसरे बेटे ने कहना शुरु किया कि मैं जंगल मे से गुजर रहा था। एक पहाड़ की कगार पर एक आदमी सो रहा था। अगर वह करवट ले तो पहाड़ से तलहटी में गिर जाये। मैं बिना आहट किये उसके

Scanned by CamScanner

पास गया तो देखा वह मेरा जानी दुश्मन है, परन्तु फिर भी मैंने आहिस्ते से उसके पास जाकर उसको किनारे से हटाया। अब वह गाँव में कह रहा हैं, कि मेरे को जीने तो नहीं देता, परन्तु मैं मरना चाहता था मुझे मरने भी नहीं देता। पिता ने कहा कि उन दोनों से तुम्हारा काम अच्छा रहा, परन्तु यह भी परोपकार नहीं हैं क्योंकि जब तुम बोलते हो तो तुम्हारा सीना फूल जाता हैं। आँखों में चमक आ जाती हैं तुम समझते हों कि मैंने बड़ा कार्य किया। जिस कृत्य से अहंकार निर्मित होता हैं, वह परोपकार नहीं हैं। तूने बड़े सूक्ष्म मार्ग से अहंकार को भर लिया।

अब अपनी बात हैं, जिस कृत्य से हम अपने में अहंकार भर लेते हैं, वह धार्मिक कार्य नहीं है। अगर सेवा से, दान से हमारा अहंकार भी भरता हैं, तो वह दान भी शोषण हैं। आत्मज्ञान बिना अहंकार नहीं जा सकता, अतः उसके पहले कोई वास्तविक परोपकार नहीं हो सकता।

जो पढ़ा हैं उसकी फीस ज्यादा

एक गुरुजी के पास एक आदमी दो बच्चों को लेकर आया। एक कुछ पढ़ा-लिखा था, दूसरा पूर्ण रूप से नया था। गुरुजी ने दोनों को देखकर कहाँ कि जो पढ़ा-लिखा हैं, उसकी फीस पाँच रुपये महीना लगेगी और जो नया हैं, उसकी फीस तीन रुपये महीना लगेगी। उस आदमी ने पूछा कि यह उल्टी बात कैसे ? पढ़े हुए की फीस कम लगनी चाहिये, क्योंकि उसमें मेहनत कम करनी होगी। गुरुजी ने कहा कि उसने पहले जो गलत पढ़ा हैं, पहले उसको मिटाना पड़ेगा, फिर नये सिरे से पढ़ाना होगा। इसलिये उसकी फीस ज्यादा हैं।

अब अपनी बात हैं, कि जो ज्ञान के घमण्ड में लगे हैं, और यह समझते हैं, कि हम समझदार हैं, उनकी उल्टी पढ़ाई को मिटाकर नया तत्वज्ञान कराना होता हैं, उसमें मेहनत ज्यादा हैं, परन्तु जो पहले से ही अपने को अज्ञानी मानता हैं, उसको पढ़ाने में तत्वज्ञान कराना मुश्किल नहीं हैं। उसको जो समझाया जायेगा वह वैसा ही समझता जायेगा। अतः अज्ञानी को समझाना सरल हैं, परन्तु जो ज्ञानी बने हुए हैं, उसको समझाना मुश्किल हैं।

Scanned by CamScanner

यहाँ दो को जगह नहीं हैं

एक जंगल में, एक झोपड़ी में एक साधु रहता था। वह एक छोटी सी झोपड़ी थी। एक दिन कुछ यात्री उधर आये। वे झोपड़ी में जल मांगने आये। उनमें से एक ने पूछा कि आप कैसे साधू हैं ? आप की झोपड़ी में तो भगवान की मूर्ति भी नहीं हैं। उस साधु ने कहा यह झोपड़ी बहुत छोटी हैं। यहाँ दो नहीं समा सकते। दूसरे दिन वह आदमी एक भगवान की मूर्ति लेकर भेंट करने आया। साधु ने कहाँ मुझे भगवान की मूर्ति की कोई आवश्यकता नहीं हैं, क्योंकि यहाँ पर (अपने हृदय की तरफ इसारा करके मात्र अभी वे ही रहते हैं। मैं तो रहा ही नहीं। मैं तो मिट गया हूँ।

अब अपनी बात हैं। वास्तव में 'मैं' और परमात्मा दोनों साथ नहीं रहते। जहाँ 'मैं' हैं, वहाँ परमात्मा नहीं हो सकता, और जहाँ परमात्मा हैं, वहाँ 'मैं' नहीं होता। मंदिर में भी जावोगे तो 'मैं' छोड़कर जाने वाले को ही परमात्म का दर्शन होता हैं। किसी ने कहा है, 'प्रेम गली अति साकरी, तामें दोय न समाय", जिसका 'मैं' जिन्दा हैं उसका संसार जिन्दा है। यही कारण हैं कि वर्षों पूजा-पाठ करने पर भी हम वहीं के वही रह जाते हैं। हमने जो कुछ धार्मिक कार्य, व्रत दान किया वह विचार करके देखे तो पायेगे कि अपने मैं की पूर्ति करने के लिये करते हैं। हमारा 'मैं' दिन पर दिन मोटा होता जाता है, और हम भगवान से बहुत दूर होते जाते हैं।

पेड़ की डाल टूट पड़ी

एक जंगल में जोर से हवा चली और एक पेड़ की डाल टूट पड़ी। उससे एक व्यक्ति के सिर पर चोंट आई। कुछ दिन बाद एक दूसरा व्यक्ति पहले वाले व्यक्ति को एक लकड़ी से मारकर भागा। वह व्यक्ति उसकी लाठी लेकर उसके पीछे भागा, कि ले अपनी लाठी तो लेता जा। जो लोग देखने वाले थे, उन्होंने कहाँ कि आपने तो हद कर दी। उस मारने वाले के पीछे उसकी लाठी देने को जा रहे हैं। उसने कहा कि कुछ रोज पहले एक पेड़ से डाल टूटकर मेरे माथे पर लगी थी, तब किसका दोष था, तब तो उस पेड़ को काटने को नहीं दोड़ै। आज इस आदमी ने मारा-इन दोनों में क्या अन्तर हैं ? अगर चोट लगनी हैं, तो वह लगेगी ही।

अब अपनी बात हैं-पाप का उदय आयेगा, तब किसी न किसी के मार्फत चोट लगेगी, नुकसान होगा। हम अगर जिसके मार्फत पाप का उदय आये, उसको देखते हैं, तो उस व्यक्ति विशेष से द्वेष होता हैं और अपना पाप का उदय देखें तो किसी से द्वेष बुद्धि करने की बात नहीं रहती। काम तो हुआ हैं, वह किसके मार्फत हुआ यह गौण हैं, और पाप-पुण्य का उदय मुख्य हैं।

Scanned by CamScanner

भगवान अकेला

एक आदमी ने रात में स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग में चला गया हैं और वहाँ भगवान को खोज रहा हैं। उसने देखा कि रास्ते में बड़ी भीड़भाड़ हैं, लाखों आदमी खड़े हैं। उसने उनसे पूछा-आज क्या है ? तो बताया कि आज एक चमत्कारी बाबा की सवारी आ रही हैं। बड़ी शान से उनकी सवारी आई, उनके साथ हजारों आदमी चल रहे थे। कुछ देर बाद वह आगे बढ़ा वहाँ पर भी भीड़ इकट्ठी हो रही थी। उसने पूछा-यहाँ कौन आने वाला हैं? तो बताया कि कोई नये भगवान बने हुए आने वाले हैं। कुछ देर बार उनकी सवारी आई। हजारों विदेशी और भारतवासी साथ थे। फिर वह आगे बढ़ा तो फिर भीड़ मिली, तो मालूम हुआ कि किसी सती की सवारी आ रही हैं। उसके साथ भी बहुत भीड़ थी।

वह आदमी हैरान हो गया, परन्तु भगवान उसको नहीं मिले। अन्त में बहुत देर बाद एक आदमी अकेला आ रहा था। उसने उससे पूछा कि क्या आप भगवान हैं, क्योंकि आप अकेले हैं। आपके साथ कोई नहीं। भगवान ने कहा-सारे लोग उन्हीं के बीच बँट गये, कोई बचा ही नहीं, जो मेरे साथ हो सके।

उस आदमी की स्वप्न देखते-देखते आँख खुल गयी। उसने किसी को बताया कि आज मैंने एक झूठा स्वप्न देखा। जब उसको स्वप्न बताया तो उसने कहा यह स्वप्न सत्य हैं। क्योंकि भगवान तो वीतरागी हैं, किसी को कुछ देते-लेते नहीं। आज की दुनिया वहीं जाती हैं, जहाँ कुछ मिलें। अतः जो नितान्त अकेला होना चाहता हैं, वही उस नितान्त एक को खोजता हैं।

अब अपनी बात हैं, कि संसार में सभी धर्म और धर्मात्मा कहलाने वालों की दुनिया भय और लोभ पर चलती हैं। किसी को वीतरागी की जरूरत नहीं हैं। अगर आज भगवान महावीर होते तो उनकी वाणी सुनने वाला मिलना मुश्किल था। आज निष्परिग्रही साधु के पास कोई नहीं जाता। जहाँ जन्तर-मन्तर मिलता हैं, जहाँ पैसा वाला बनने की जड़ी-बूटी हैं, जहाँ राज्य में कोई काम करवा सकता हैं, वहीं भीड़ लगती हैं। जहाँ जाने वाले के अहंकार की पुष्टि होती हैं, जहाँ जाने पर उनका नाम लेकर बुलाया जाता हैं, वहीं लोग जाते हैं। जहाँ रोग का इलाज बताते हैं, तेजी-मन्दी बताई जाती हैं, वहीं लोग जाते हैं। इस जमाने में किसी को भगवान की जरूरत नहीं है। उस मन्दिर में आदमी जायेगा, जहाँ कोई कहने वाला मिले, कि सेठ साहब, आप आ गये। क्योंकि वीतरागी के पास आत्म कल्याण के अलावा और कोई बात ही नहीं हैं, अतः वह अकेला ही होता हैं।

Scanned by CamScanner

भेद ज्ञान

एक फ़कीर किसी गाँव में ठहरे हुए थे। लोग उनके दर्शन करने आते थे और अपनी शंकाओं का समाधान कराते थे। एक आदमी आया उसने पूछा कि यह कैसे सम्भव हैं, कि शरीर में दर्द हो अथवा चोट लगे, कोई उसको काटें तब भी पीड़ा न हो। शरीर को काटने से तो पीड़ा होगी ही, फिर शरीर आत्मा को अलग-अलग देखने से भी क्या सिद्धी हुई। फ़कीर ने कहा यहाँ दो नारियल पड़े हुए हैं। एक कच्चा हैं, उसमें पानी हैं, उसको तोड़कर उसकी गिरी अलग करना चाहों तो नहीं होगी, क्योंकि वह गिरी काठ के साथ जुड़ी हुई है। यह दूसरा नारियल हैं। इसका पानी सूख गया हैं, इसकी गिरी काठ से अलग हो गई हैं। इसका काठ तोड़ने पर भी गिरी को कोई हानि नहीं होगी। नारियल का खोल ओर गिरी अलग-अलग हो गई हैं। फ़कीर ने कहा यहीं वजह हैं-कुछ लोग शरीर की खोल से जुड़े रहते हैं। शरीर की चोट के साथ उनको भी चोंट पहुँचती हैं, जो अपने को शरीर की खोंल से थोड़ा फासला कर लेते हैं उनके शरीर को काटने पर भी कोई पीड़ा और दुःख नहीं होता।

अब अपनी बात हैं-जिनके भीतर राग पड़ा हुआ हैं, वे शरीर से जुड़े हुए हैं। जो गीलापन हैं, वही राग हैं। जिन्होंने शरीर को ही अपना होना मान रखा हैं, उनका शरीर और आत्मा का अलग-अलग अस्तित्व होने पर भी वे एक अनुभव करते हैं। वे शरीर के मरण से अपना मरण शरीर की उत्पत्ति से अपनी उत्पत्ति मानते हैं। वे शरीर की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानते हैं। ऐसा ही उनके अनुभव में आता हैं। हमें शरीर ही दिखाई देता है। वह जो भीतर हैं, वह इस तरह से जुड़ा हुआ हैं कि उसका हमें पता भी नहीं है। संसार के अनेको उदाहरण हैं, बादाम का ऊपर का काठ अलग हैं। भीतर भी एक पतला छिलका हैं, जो गर्म पानी में डालने पर अलग होता हैं और

Scanned by CamScanner

गिरी अलग हैं। इसी प्रकार चेतन आत्मा अलग हैं। शरीर ऊपर का काठ सदृश्य हैं, और राग आदि भीतर का छिलका हैं। जो तपस्यारूपी अग्नि में तपाने पर अलग होता है। आत्मा उन सबसे अलग हैं। इसी प्रकार पिश्ता हैं, मूंगफली हैं, सबमें ऐसा ही हैं। उनको देखकर हमें अपने भीतर का भेद समझ में आ सकता हैं। गिरी को ग्रहण करना हैं, और बाकी छोड़ देना हैं। वहाँ पर ग्रहण करने वाला तीसरा व्यक्ति हैं, परन्तु आत्मा के विषय में तो वह आप ही अपने को अपने रूप देखने वाला हैं।

प्रेम में बोझा नहीं

एक साधु पहाड़ पर चढ़ रहा था। दोपहर का समय था, तेज सूरज चमक रहा था। साधु के कंधे पर बोझा था—किताबें, कपड़े-लत्ते और बिस्तर। वह पसीने से लथपथ हो रहा था। चढ़ाई अभी ज्यादा थी। उसी समय साधु ने देखा, एक पंद्रह वर्ष की लड़की अपने कंधे पर एक बच्चे को लिए पहाड़ पर चढ़ रही है। वह भी पसीने से लथपथ है। साधु को दया आ गयी। उसने लड़की से पूछा—"बेटी ! बहुत बोझा मालूम पड़ रहा होगा ?" लड़की ने नीचे से ऊपर तक साधु को देखा और कहा—"बाबाजी ! बोझा तो आपके पास है। मेरे पास तो मेरा भाई है। भाई बोझा नहीं होता।"

जहाँ प्रेम है वहाँ कष्ट नहीं होता। लोग तपस्या को कष्ट समझते हैं। परन्तु वह कष्ट नहीं, वह तो आनन्द का कृत्य है। जिन्होंने तपस्या को समझा है, उसे अपनाया है, वह कष्ट नहीं सह रहे हैं, बल्कि तपस्या उनके जीवन का संगीत है, उनका आनन्द है। अज्ञानी के लिए शरीर का कष्ट ही दुःख है। ज्ञानी अपने आत्मिक आनन्द में लगा रहता है। उसके लिये शारीरिक कष्ट दुःख-रूप नहीं है।

Scanned by CamScanner

राजगृह के तीन मित्र

राजगृह नगरी में तीन मित्र थे। उन्होंने यह निश्चित किया कि जिसको पहले वैराग्य होगा, वह बाकी दो को खबर कर देगा। संयोग से उनमें से एक को वैराग हो गया। वह घर का त्याग करके साधू होने को जाने लगा। वह अपने पहले मित्र के पास गया। वह मित्र राजगृह नगरी का सबसे बड़ा धन कुबेर था। तिजोरी खुली हुई थी। लाखों मोंहरे पड़ी हुई थी। लेन-देन चालू था। उसी समय वह मित्र आया, और अपने मित्र से बोला कि मैं तो जा रहा हूँ, उस धन कुबेर मित्र ने कहा-चलो मैं भी चलता हूँ-पहले मित्र ने कहा कि इन सबको किसी को सँभला देवों, फिर चलो। उसने कहा कि यह तो पहले भी मेरा नहीं था, अब भी मेरा नहीं हैं। जिसका होगा वह जाने, मेरा अपना तो अपने सिवाय कुछ था ही नहीं। वह मित्र सब कुछ वैसे ही छोड़कर उसके साथ चल पड़ा। वह दोनों अपने तीसरे मित्र के पास पहुँचे। उस दिन उसकी शादी हुई थी, नई पत्नी घर पर आई थी। उन दोनों ने उसको पुकारा। वह नीचे आया। उन दोनों ने कहा कि हम दोनों तो गृहस्थी का त्याग करके जा रहे है। उसने कहा कि मैं भी चला। उन दोनों ने कहा-भीतर जाकर कह तो आ। उसने कहा जो मेरे भीतर हैं उसको पूछ लिया, मकान के भीतर मेरा अपना कोई नहीं है, किससे पूछूं ? तीनों मित्रों ने जंगल में जाकर आचार्य के पास मुनि दीक्षा ले ली।

अब अपनी बात हैं। जिन्होंने अपने एक अकेले चैतन्य के अलावा पर में स्त्री-पुत्रादि, धन आदि, शरीर आदि में अपना-पना मान रखा हैं, उनको छोड़ने में कठिनाई होती हैं, और छोड़ने पर भी भीतर से अपना-पना नहीं छूट पाता। इसलिये वे तो बँधे हुए ही है। परन्तु जिन्होंने अपने आप को पर से भिन्न जान लिया है। उनके लिये उनकी दुकान धन-दौलत उनका नहीं है। स्त्री-पुत्र आदि भी पर हैं। एक मेले में अथवा धर्मशाला में इकट्ठे ठहरे हुए हैं। बँधे हुए नहीं हैं, छूटे हुए ही हैं। अतः भीतर से तो अपनापना नहीं हैं। बाहर से धागा जुड़ा था, उसको तोड़ने में कोई अड़चन नहीं होती। मात्र मौका मिलना चाहिये। हम भी गृहस्थ में रहते हुए अपने आप को सबसे अछूता रख सकते हैं। इसी का नाम घर में वैरागी हैं।

Scanned by CamScanner

उस बोझें को उतार क्यों नहीं देते ?

दो साधु नदी पार कर रहे थे। एक वृद्ध था और एक जवान था। नदी में पानी कुछ ज्यादा था। एक जवान लड़की भी नदी पार करना चाहती थी, परन्तु डर के मारे पार नहीं कर रही थी। रात्रि का समय आने वाला था। उस लड़की ने साधु से विनती की कि मुझे सहारा देकर नदी पार करवा दो। पहले वाला वृद्ध साधु बात को सुनी-अनसुनी करके आगे बढ़ गया। उस लड़की ने दूसरे जवान साधु से भी विनती करी, उसने उस लड़की को अपने कन्धे पर बैठा लिया, और नदी पार करा दी। पहले वाले साधु ने पीछे घूमकर देखा और उसके तन बदन में आग लग गयी कि इस साधु ने स्त्री का स्पर्श कैसे कर लिया ? यह तो भ्रष्ट हो गया। मैं संघ में जाकर आचार्य से कहकर इसका बहिष्कार कराकर दण्ड दिलाऊँगा। दूसरे वाला साधु उस लड़की को उस पार जाकर किनारे पर उतार कर जब आश्रम में गया तो वृद्ध साधु सबसे ही बात कह रहा था। इस साधु ने कहा कि मैं तो उस लड़की को किनारे पर उतार आया। आपने अभी तक उसको अपने मन में बैठा रखा है। उस बोझे को क्यों लिये हुए हैं ? उसको उतार क्यों नहीं देते ?

अब अपनी बात हैं। हम भी दस-बीस वर्ष का बोझा अपने मन पर लिये घूमते हैं। किसी ने कभी कुछ कहा था, अब वह आदमी भी नहीं रहा, परन्तु अपने आप पर उस बात का बोझा, उस अपने कषाय परिणामों का बोझा कितने ही वर्षों तक लिये रहते हैं, और उसको याद कर-करके अपने परिणामों को कषायला करते रहते हैं, और अपने को दुःखी बनाते रहते हैं। कभी भी अपने मन से उस बौझें को नहीं उतारते, जिससे मन शान्त हो जाता, और अपने ही द्वारा अपने को दुःखी बनाना मिट जाता।

★ समाधि के मार्ग पर यदि भगवान भी मिले तो उन्हें दूर कर देना।

Scanned by CamScanner

पुरानी यादगार

एक बाद पूज्य वर्णी जी सम्मेद शिखर जी से गिरीडीह जा रहे थे। पैरों से चला नहीं जा रहा था। एक पीछे से धक्का देकर चलाने वाली आधी साइकिल मँगाई गई थी। क्योंकि वर्णी जी सवारी गाड़ी पर नहीं चढ़ते थे। मैं करीब साढ़े नौ बजे सवेरे सम्मेद शिखर जी पहुँचा। उसी समय उनके चलने का समय हो गया। काफी दूर चलना था। मैं भी बिना पूजा-पाठ किये उनके साथ चल दिया। साथ में कई आदमी थे। कुछ दूर जाने पर उन्होंने कहा कि भइया ! तुम वापस चले जावो। इतनी दूर आ गये हो। वापिस इतनी दूर जाना होगा। मैंने कहा अभी आपके साथ चल रहे हैं। करीब एक-डेढ़ किलोमीटर आने पर वे रुक गये और कहा कि तुम वापस नहीं जावोगे तो हम लोग आगे नहीं जायेगे। मैंने जरा ताव से कहा कि आपके पीछे-पीछे चलते हैं वह भी आपको मंजूर नहीं हैं। उन्होंने कहने का भाव समझ लिया और बोले कि मैं कब कहता हूँ कि मेरे पीछ-पीछे चलो। मैं तो कहता हूँ मेरे आगे जावो। मेरे को तुम्हारे आगे जाने से ज्यादा प्रसन्नता होगी।

अब अपनी बात हैं-संसार मार्ग में व्यक्ति दूसरों से आगे बढ़ना चाहता हैं-आगे चलने वाले को नीचे गिराना चाहता हैं। परन्तु मोक्ष मार्ग या त्याग मार्ग में व्यक्ति दूसरे को आगे बढ़ाना चाहता हैं। शिष्य भी गुरु से आगे बढ़ता हैं, तो गुरु की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रहता। एक दूसरे को हाथ का सहारा देकर अपने से आगे बढ़ाता हैं। उसका हर्ष वहीं जानता हैं। दूसरे को मोक्ष मार्ग में चलने के लिये वह सब कुछ कर सकता हैं।

Scanned by CamScanner

पगड़ी के दाम

एक आदमी अपनी कहानी कह रहा था। कि जब मैं जवान था तब एक राजा की राजधानी में गया, और एक चमकदार रंगीन पगड़ी खरीदी, और राज दरबार में लेकर गया। राजा की आँख उस पगड़ी पर पड़ी। उसने पूछा-कितने में बेचनी हैं ? मैंने कहा पाँच हजार में बेचनी हैं। राजा के कुछ कहने के पहले ही वजीर ने झुककर राजा के कान में कहा कि सावधान आदमी धोखेबाज मालूम होता हैं। पाँच-दस रुपये की पगड़ी के पाँच हजार माँग रहा है। मैं समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। मैं राजी खुशी हारने वाला नहीं था। मैं वापिस आने लगा, और राजा से कहा कि मेरी पत्नी ने तो पहले ही कहा था कि राजा कदरदान नहीं हैं, केवल एक पड़ोसी राजा ही ऐसा हैं जो इसके पचास हजार दे सकता है। मैं उसी राजा की खोज में निकला था। मैं जा रहा हूँ। यह वह जगह नहीं हैं। उस राजा ने कहा कि पगड़ी रख दो और पचास हजार रुपये ले जावो। दरवाजे पर वजीर मिला और उसने कहा कि तुमने तो हद कर दी। मैंने कहा कि मुझे आदमियों कि कमजोरियों का पता है। मुझे उस अहम् का पता है। जिसको छू दो तो आदमी घूमने लगता है।

अब अपनी बात हैं। यह व्यक्ति अहंकार से बंधा हैं, और जो व्यक्ति अपने अहंकार से बंधा है वह सब तरह से बंधा है। अपने अहंकार पर चोट होते ही यह उस अहंकार की रक्षा करने को सबकुछ करने को तैयार हो जाता है, सबकुछ देने को तैयार हो जाता है। सब कुछ देकर उस अहंकार की रक्षा करता है। यह जो कुछ करता है, धर्म अथवा कर्म मात्र अपने अहंकार का पोषण करता है। यही अहंकार उसकी रोटी है। उसी अहंकार में उत्पन्न हुआ है, और उसी अहंकार में मर जाता है। बाहर में हम उसका नाम धर्म भी रख देते हैं। अतः देखा जावें तो एक ही पूजा हैं, एक ही धर्म हैं। इस अहंकार से मुक्त होना। जिस हृदय में अहंकार नहीं वहीं मंदिर हैं।

Scanned by CamScanner

मेरी पुरानी यादगार

बहुत वर्ष पहले की बात है। मैं और पूज्य वर्णी जी ईसरी से नीमिया घाट जा रहे थे। रास्ते में पूज्य वर्णी जी थक गये। वृद्ध अवस्था थी, पैरों में दर्द था। बोले-भैया ! कहीं पर बैठ जावें। वही पर एक छोटा सा गाँव था। एक मकान के सामने एक तख्ता बैठने का पड़ा था। मकान वालों से पूछकर उस तख्ते को सीधा कर दिया। और पूज्य वर्णी जी उस पर बैठ गये। साधु का रूप देखकर गाँव की कुछ औरते भी आ गई। पूज्य वर्णी जी ने उनसे कहा-बेटा ! मछली तो नहीं खाती हो न ! उन्होंने हाँ कहा। इस पर वर्णी जी ने कहा-उसमें आपके हमारे जैसा ही जीव होता हैं, वह भी दुःख-सुख का अनुभव करता हैं, उसको भी कष्ट होता हैं। अतः मछली अथवा मांस नहीं खाना चाहिए। माँस भी किसी जीव के शरीर का ही टुकड़ा होता है। उसमें और हमारे में क्या अन्तर हैं ? वे छोटे जीव तो अपना दुःख दर्द भी प्रकट नहीं कर सकते। हम तो हमारे दुःख को रो-पीटकर कह तो देते हैं।

वर्णी जी की बात उन औरतों को समझ में आ गई। दस-बारह औरते थी। उन्होंने मछली खाने का त्याग कर दिया। वहाँ से चले तो मैंने पूज्य वर्णी जी को कहा कि महाराज ! हम गला फाड़-फाड़ कर रोज कहते हैं, कोई त्याग नहीं करता, परन्तु आप के जरा सा कहते ही इन्होंने त्याग कर दिया। यह आपके परिणामों की निर्मलता का असर हैं।

अब अपनी बात हैं। वास्तव में कहने वाले के सरल परिणामों का असर सामने वाले पर भी पड़ता हैं, अगर हमारे परिणामों में कटुता, होगी, सरलता नहीं होगी, मान कषाय होगी तो उसका असर नहीं होता। छोटे बच्चे में ऐसी बातें नहीं होती, इसीलिये उसकी बातें सुहावनी लगती हैं।

Scanned by CamScanner

यह उसकी समस्या है

एक बिल्डिग में दो आदमी रहते थे। उनके फ़्लैट्स अलग-अलग मंजिलों पर थे। शाम के समय अक्सर एक ही वक्त अपने-अपने ऑफिस से लौटते और लिफ़्ट में सवार होते। पहले आदमी का फ़्लैट पाँचवीं मंज़िल पर था। जैसे ही लिफ़्ट पाँचवीं मंज़िल पर रुकती, दरवाजा खुलता, वह उतरने के लिये आगे बढ़ता, फिर वापस मुड़कर दूसरे आदमी के ऊपर थूकता और लिफ़्ट से उतरकर चला जाता। दूसरा व्यक्ति चुपचाप रूमाल निकालता, अपना चेहरा पोंछ लेता, कोट पर पड़ा थूक पोंछता, फिर आठवीं मंजिल पर उतरने की तैयारी करने लगता। रोज़-ब-रोज़ ऐसा होते देखकर, एक दिन लिफ़्टमैन से नहीं रहा गया। उस दिन आँठवीं मंज़िल पर जब दूसरा व्यक्ति उतरने ही वाला था तब लिफ़्टमैन ने आखिर पूछ ही लिया-यह क्या मामला है, साहब ? यह आदमी ऐसा क्यों करता है ? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया-उसी से पूछो, यह उसी की समस्या है, मेरा इसमें कोई हाथ नहीं। कोई-न-कोई पागलपन उस पर सवार होगा। मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता, रुमाल निकालकर पोंछ लेता हूँ, असली तकलीफ़ तो वही पाता है-थूकने से पहले तकलीफ़ पाता है, थूकने के वक्त तकलीफ़ पाता है, और थूकने के बाद भी तकलीफ़ पाता होगा। इसलिये यह समस्या तो उसकी है, हम तो सिर्फ दर्शक है।

जब अपनी बात करते हैं। समस्त बाहरी घटनाओं को इस प्रकार देखने की कला हमें यदि आ जाए तो फिर कोई हमें दुःखी नहीं कर सकता। दूसरा कुछ देता हैं, यह उसका काम है-उसे लेना या न लेना, यह हमारा काम हैं। देना उसको दिखाता है, लेना हमको दिखाता है। देना उसके आधीन है, लेना हमारे आधीन है। वह क्या देता है, यह उसकी बात है-हम क्या लेते हैं, यह हमारी बात है। अगर दूसरा गाली देता है तो यह उसकी समस्या है, हम क्या लेते हैं वह हमारी समस्या है। न तो देने वाला ही लेने वाले के आधीन हैं, और न लेने वाला ही देने वाले के आधीन वस्तुतः दोनों स्वाधीन हैं और दोनों की समस्या अपनी-अपनी है।

Scanned by CamScanner

श्रद्धा की महिमा

एक राजा था। उसका एक ही पुत्र था। किसी कारण वश राजा अपने पुत्र से नाराज हो गया। उसने पुत्र को राज्य से निकाल दिया और अपना उत्तराधिकारी बनाने सेभी इंकार कर दिया। वह लड़का अन्य राज्य में चला गया और कोई भी आय का साधन न होने के कारण वह भीख मांग कर पेट भरने लगा। वहाँ के लोग उसका मजाक उड़ाते थे और उसे मारते पीटते भी थे। उसका कोई रहने का ठिकाना भी न था।

एक बार राजा बहुत बीमार पड़ गया, उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। मंत्री ने राजा से कहा महाराज आपके पश्चात् इस राज्य का क्या होगा। यदि आप कहें तो राजकुमार को ढूंढ निकाला जाए राजा ने पुत्र को ढूंढ लाने के लिए मंजूरी दे दी। मन्त्री ने सब जगह राजकुमार को ढूंढने के लिए दूर भेजे। और स्वयं भी पास के राज्य में खोज करने गया। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि युवराज तो हाथ में कटोरा लिए भीख मांग रहा है और कुछ बच्चे पागल समझकर उसे तंग कर रहे थे। मन्त्री उसके पास पहुंचा और नमस्कार कर उससे कहा-महाराज ने आपको राज्य का उत्तराधिकारी बनाने के लिए बुलाया है। अब आप ही राजा होंगे। उस भिखारी के हाथ से कटोरा गिर पड़ा। अपना होश संभालते ही उसका भिखारीपन मिट गया। यद्यपि वह आज भी भूखा था।

अब अपनी बात है—इसी प्रकार यह अज्ञानी जीव धन दौलत की भीख मांग रहा है। और उनकी चाह में भिखारी हुआ फिर रहा है। इसे नहीं मालूम कि यह उस आत्म साम्राज्य का मालिक है जहाँ आनन्द ही आनन्द है। जब कभी वह कदाचित् तत्वज्ञान के द्वारा उसका अनुभव करता है कि अहो ! मैं तो परमात्मा हूँ, मैंने आज तक अपने आपको जाना ही नहीं इसलिए पर पदार्थ में दुख सुख की कल्पना कर तथा पर पद में अपनापना मान कर के, मैं उसी का भिखारी हो रहा हूँ।

Scanned by CamScanner

यह मेरी कितनी बड़ी भूल है। और यह दृढ़ता से निजस्वरूप का श्रद्धान करता है, उसके हाथ से मिथ्यात्व के वशीभूत ग्रहण किया हुआ-परपद परभाव रूपी भिक्षा पात्र गिर पड़ता है। अभी वह पद मिला नहीं, पर अपनी श्रद्धा में तो अपने को उसी समय उस रूप निर्णय कर लेता है।—अहो कैसी है निज में निजत्व की श्रद्धा। यही है सम्यक्त्व की महिमा।

ज्ञानी कौन ?

सुकरात अपने समय का बहुत बड़ा ज्ञानी समझा जाता था। एक बार युनान के लोगों ने किसी देवी की अराधना की और पूछा इस राज्य में सबसे बड़ा ज्ञानी कौन है ? उस देवी ने उन्हें बताया कि सुकरात सबसे बड़ा ज्ञानी है। अब लोग सुकरात के पास पहुँचे और कहा कि आप सबसे बड़े ज्ञानी है। सुकरात ने कहा कि आप लोगों को समझने में कोई भूल हो गई है, मैं तो सबसे बड़ा अज्ञानी हूँ।

वे लोग फिर देवी के पास गए और उससे पूछा हे देवी आप तो कहती थीर कि सुकरात सबसे बड़ा ज्ञानी है किन्तु वह तो अपने को सबसे बड़ा अज्ञानी बताता है। देवी ने कहा यही तो ज्ञानी की परिभाषा है कि दुनिया जिसको ज्ञानी देखती है वह अपने आप को अज्ञानी देखता है।

अब अपनी बात है। मोक्ष मार्ग में चलने के लिए सबसे बड़ी रूकावट है अपने को ज्ञानी व धर्मात्मा मानना। जब वह पहले ही धर्मात्मा तथा ज्ञानी है तो उसे धर्मात्मा होने का पुरुषार्थ करने की अथवा मोक्षमार्ग को खोजने की कोई जरूरत नहीं होगी। मिथ्यात्वी और सम्यक्त्वी की तुलना करते समय सम्यक्त्वी को ज्ञानी और मिथ्यात्वी को अज्ञानी कहा है। ओर यह बात मिथ्यात्वी को सम्यक्त्व के सन्मुख करने के लिए कही है। परन्तु सम्यक्त्वी अपने आप को मानता है कि मुझसे बड़ा अज्ञानी कौन होगा जो संसार में विषय कषाय में पड़ा हुआ है आँखे होते हुए भी विषयों के खडडे में गिरे, वह ज्ञानी कैसा ? वह अपनी तुलना संयमधारी चारित्रवान से करता है और पाता है कि मेरे मैं कितनी कमी है।

Scanned by CamScanner

'मैं' या परमात्मा

एक दार्शनिक विद्धान भगवान की खोज कर रहे थे। वे तारों और चन्द्रमा, सूर्य तक में भी खोज कर चुके थे। परन्तु परमात्मा नहीं मिला। एक रात्री उन्होंने स्वयं देखा कि परमात्मा उस जगह है वह मिल सकता है परन्तु शर्त यह है कि दो एक साथ नहीं रह सकते या तो परमात्मा ही होगा या 'मैं' ही रहेगा। परमात्मा के दर्शन होते ही मैं नहीं रहेगा। जहाँ परमात्मा है वहा 'मैं' नहीं और जहाँ 'मैं' है वहाँ परमात्मा नहीं। दूसरे रोज वह उस जगह पर जाने को तैयार हुआ और जैसा स्वयं में देखा था उस जगह पहुँच गया। मकान खाली नजर आ रहा था। वह धीरे से बिना आवाज किये ऊपर चढ़ा लेकिन कमरा बंद था। अब वह सोचने लगा कि अगर मैंने किवाड़ खोले और परमात्मा सामने आ गया तो मेरा 'मैं' नहीं रह सकता और अगर मेरा 'मैं' ही चला गया तो फिर बाकी क्या बचेगा। ऐसा सोचते ही उसके मन में कमजोरी आ गयी और वह आहिस्ता-आहिस्ता दोनों जूते हाथ में लेकर नीचे उतरा जिससे आवाज सुनकर कहीं परमात्मा न आ जावें। नीचे उतरते ही वह भागा और अपने घर पहुँच गया। अब भी वह उसको खोजता तो है। पर जहाँ वह है वहाँ नहीं। जहाँ नहीं है वहाँ खोजता है। अतः खोजने का काम आज भी चालू है।

अब अपनी बात है जहाँ वह है वहाँ हम नहीं देखते।

क्योंकि हमें डर है कि उससे सामना होते ही यह मेरा 'मैं' मर जायेगा जिसको जन्म-जन्म से अहम् का पानी दे देकर उसे मोटा और पुष्ट किया है। धन दौलत गाड़ी मकान स्त्री पुत्र शरीर, समाज, धर्म कर्म सबही कुछ उसी 'में' के लिए इकट्ठे किये हैं। यहाँ तक भी कि शरीर का नाश हो तो हो परन्तु मेरा 'मैं' बच जाने/सवेरे से रात्रि तक जो कुछ करते हैं अच्छा बुरा-दान, धर्म-सेवा किसलिये मेरा नाम रह जाये। मैं चाहे मर जाऊँ अगर नाम है तो जिंदा ही हूँ। इस डर से कि कहीं ऐसा मेरा पाला पोसा मैं न मर जाये, यह भगवान को जहाँ है वहाँ नहीं खोजता है। क्योंकि यह जानता है कि दो एक साथ नहीं रह सकते। अतः जहाँ चेतना अपने में है वहाँ आप अपने में नहीं खोजकर मंदिर-मस्जिद, तीर्थों में जगह-जगह खोज रहा है और वह इसी में संतुष्ट है। कि मैं भगवान की खोज में लगा हूँ।

Scanned by CamScanner

दयामयी उदारमना-वर्णीजी

एक बार वर्णी जी (गणेश प्रसाद जी) जब ब्रह्मचारी अवस्था में साधक थे तब की यह घटना है। वर्णी जी कुछ ब्रह्मचारियों के साथ नजदीक के गाँव में आहार लेने को गये थे। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। जेठ की गर्मी में नदी का पानी सूख गया था और नदी में से ही आर पार का आवागमन होता था। आहार लेकर करीब ११ बजे दोपहर में वे कुछ लोगों के साथ वापिस आ रहे थे। गर्मी के मौसम में उस सूखी हुई नदी के किनारे एक वृद्ध पुरुष बैठा हुआ था। वह जाति का चमार था तथा प्यास से व्याकुल हो रहा था प्रत्येक राहगीर से वह पानी पिलाने की प्रार्थना कर रहा था। सभी यात्रियों के हाथों में पानी से भरे हुए लोटे होते हुए भी सब सुनी अनसुनी करके जा रहे थे। जब वर्णी जी उस बूढ़े चमार के पास से गुजर रहे थे उसने वही प्रार्थना उनसे भी की जात-पात, छुआ-छूत का जमाना था। संकीर्णता से परे उदारमना वर्णी जी से न रहा गया और उन्होंने झट उसे अपने लोटे से पानी पिला दिया। साथ ही जिस लोटे से पानी पिलाया था वह भी उसको दे दिया और कहा कि भैया यह लौटा भी आप ले लो। समाज वाले लोग यह लोटा भी अब मुझे रखने नहीं देगें।

अब अपनी बात है। धर्म का स्वरूप तो दयामयी होता है। वह दया कैसी जहाँ कोई शर्त हो कि इस-इस तरह के व्यक्ति पर तो दया करेंगे और अन्यथा होने पर दया नहीं करेंगे। दया तो वहाँ होती है, जहाँ कोई शर्त नहीं। वह दयाभाव तो भेदभाव रहित सभी प्राणियों के प्रति एक सा होना चाहिए फिर चाहे शेर अथवा साँप जैसे हिंसक पशु ही क्यों न हों। दया करना अथवा दयामय होना दोनों में भारी अंतर है। दया करने में शर्त है स्वाभाविक अंतरंग पीड़ा या पुकार का अभाव है। जबकि दयामयी होना निःशर्त भाव हैं, जहाँ कुछ भी सोचना नहीं पड़ता, वह जीवात्मा को स्वयं से सभी के लिए दयामय है। जैसे मिश्री की डली स्वाभाविक मिठास से परिपूर्ण है, वह तो सभी के लिए मीठी है। ऐसी दया ही धर्म की कोटी में आती है, जहाँ ऊँच नीच, जात-पात, शत्रु मित्र, और अमीर गरीब आदि का कोई भेद ही नहीं होता।

Scanned by CamScanner

दुःख कहाँ से आया

एक बार दो व्यक्ति अलग-अलग जगह से चुनाव जीते। लोगों को उनका स्वागत करना था। अब स्वागत की जोरदार तैयारियाँ शुरु हो गई। दोनों तरफ के लोगों ने यह निश्चित किया कि एक ही प्लेट फार्म (मंच) से दोनों नेताओं का स्वागत किया जाए।

स्वागत का समय आया। एक पार्टी ने अपने नेता का दक्षिण से मंगाई गाई वहुत बड़ी सुंदर माला पहना कर सम्मानित किया किन्तु बैठाने के लिए साधारण आसन था।

दूसरी पार्टी ने अपने नेता के लिए गुलाब के फूलों का सुन्दर सा हार पहनाया और उसके बैठने के लिए जो आसन उपलब्ध कराया था वह बहुत ही शानदार राजसीठाठ सा था। समारोह खत्म हो गया।

दोनों नेता बड़े ही उदास और खिन्न थे, इसी कारण वह भोजन भी ठीक से नहीं कर पाए। एक दुःखी था कि उसको दूसरे जैसी सुन्दर लम्बी माला क्यों नहीं पहनाई गई। इससे उसे अपने पक्ष वालों पर गुस्सा आ रहा था। दूसरा इससे दुखी था कि उसके पक्ष वालों ने दूसरे जैसा सुंदर व राजसी आसन उसके लिए क्यों नहीं उपलब्ध कराया। इस लिए उसे अपने समर्थकों पर गुस्सा आ रहा था।

अब अपनी बात है। दुख का कारण अथवा क्रोध का कारण क्या पार्टी के लोग थे ? अथवा माला थी अथवा वह आसन था ? तत्व दृष्टि से देखा जाए तो इसमें से कोई चीज भी दुख का कारण नहीं थी। दुःख का एक मात्र कारण था हमारे अंतरंग में बैठा-अहंकार। जो बार-बार कह रहा था मैं बड़ा हूँ।" क्रोध का कारण था हमारी अपेक्षाएँ जो हमने बना रखी थी कि मेरा स्वागत ऐसा होना चाहिए-वैसा होना चाहिए। किन्तु तनिक भी अपेक्षा के अनुकूल न होने पर क्रोध जागृत हो जाता है। दुख का कारण था दूसरे के साथ हमारी ईष्या बुद्धि। पर हम दूसरे को दुख का कारण मानकर उसको ठीक करने की चेष्टा तो करते है जो हमारे अधीन नहीं है। परन्तु दुख का कारण हमारे में ही है, हम ही है, ऐसा जान कर अपने को ठीक करने की चेष्टा नहीं करते। दुख सुख दूसरे की वजह से नहीं, हमारी अपनी वजह से है। उसे अपने भीतर खोजकर अपने को ठीक करना है।

Scanned by CamScanner

तत्व ज्ञानी कितने

एक बहुत बड़े ज्ञानी पुरुष थे। जगह-जगह गाँव में जाकर धर्म उपदेश दिया करते थे। उनका उपदेश सुनने के लिए बड़ी संख्या में लोग आने लगे इससे उनकी प्रसिद्धि भी बढ़ गई।

एक बार एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला कि—"मैं भी आपकी शरण लेना चाहता हूँ लेकिन पहले मैं यह जानने को उत्सुक हूँ-कृपया पहले मुझे बताएँ कि आपके उपदेश को सुनकर आज तक कितने जीव तत्वज्ञान को प्राप्त हो चुके हैं।

आगन्तुक का मर्मभेदी प्रश्न सुनकर ज्ञानी पुरुष ने कहा—तुम संध्या काल में मेरे पास आना-तब तक मैं इस प्रश्न के उत्तर पर सोच विचार कर लूंगा, क्योंकि मेरे पास इस तरह का कोई लिखित विवरण-खाता पत्रादि भी नहीं है, परन्तु शाम को आने से पूर्व इस गांव में जो भी ४०-५० घर हैं कृपया सबसे यह पूछ आना कि वे धर्म का अनुसरण करके क्या चाहते हैं-तत्वज्ञान का प्राप्ति अथवा कुछ और। उपरोक्त प्रश्न का उत्तर लेने वह लगभग सभी ४०-५० घरों पर घूम आया। किसी ने कहा हमें तो धन चाहिए हम इसके अभाव में बहुत दुखी है। अन्य कुछ घरों में पूछने पर पता चला कि उनकी इच्छा पुत्र प्राप्ति की है या मकान-वन जाए, दुकान चलने लगे, शादी हो जाए अथवा समाज में प्रतिष्ठा बन जाए कि हम धर्मात्मा भी है। इस प्रकार के कितने ही अभिप्राय संसार शरीर भोगों के पोषक ही थे, जो उसे मिले, परन्तु किसी एक को भी तत्वज्ञान प्राप्ति की जरूरत नहीं थी।

आगन्तुक प्रश्नकर्ता स्वयं ही विचारमग्न हो गया और सोचने लगा कि शायद महात्मा जी ने मेरे प्रश्न का उत्तर तो स्वतः ही दे दिया। फिर भी संध्या होने पर वह उनके पास पहुँचा और बोला यहाँ तो किसी को सम्यग्दर्शन या मोक्षमार्ग नहीं चाहिए, सभी को संसार शरीर भोग ही चाहिए अथवा समाज के मान प्रतिष्ठा हो जाए कि मैं धर्मात्मा तत्वज्ञानी भी हूँ।

उन महात्मा ने कहा बता-अब तू क्या चाहता है, अगर तू तत्वज्ञान नहीं चाहता तो सम्यग्दर्शन अथवा मोक्षमार्ग की प्राप्ति तुझे

Scanned by CamScanner

कैसे हो सकती है। उसने कहा-महाराज अभी तो मेरी उम्र बहुत कम है, कुछ वर्ष बाद आपकी शरण में आने की सोचूंगा।

अब अपनी बात है-यही हालत ज्यादातर हम सब की है, हम सब लोग अधिकांशत संसार शरीर-भोगों के पीछे घूम रहे हैं, किसी तरह कोई चमत्कार कर दे या हो जाए जिससे हमारी चिरकाल से संजोई इच्छायें पूरी हो जाऐं अथवा धन पैसा परिवार आ जाए शायद यही हमारा मोक्ष है, हमें अन्य मोक्ष या मोक्षमार्ग की जरूरत नहीं है। ज्यादातर अभिप्राय में यह बना हुआ है कि हमारी समाज में प्रतिष्ठा बन जाए कि इतना बड़ा धनवान होकर भी साथ में तत्वज्ञानी धर्मात्मा भी हैं और इसीलिए शास्त्र, सभा, गोष्ठी अथवा तत्वचर्चा में भाग लेते हैं। त्यागी व्रती विद्वानों की संगति भी करते हैं वह भी इसी अभिप्राय से करते हैं। आदि-आदि। वास्तव में तत्व जिज्ञासु विरले ही होते हैं।

अपने घर में आग लगा ली

एक स्त्री ने एक नया कंगन बनवाया और उसे पहनकर वह अड़ोस-पड़ोस में सब जगह घूम आई। परन्तु किसी ने यह नहीं पूछा कि यह नया कंगन कब बनवाया, बड़ा अच्छा है। अतः उसने शाम को अपने घर में आग लगा ली और कंगन वाले हाथ को ऊँचा करके चिल्लाने लगी कि आग लग गयी, आग लग गयी। आदमी इकट्ठे होने लगे। एक स्त्री ने उससे पूछा—"यह नया कंगन आज ही बनवाकर पहना है क्या ? बड़ा अच्छा है।" उस स्त्री ने कहा—"पहले पूछ लेती तो घर में आग नहीं लगानी पड़ती।"

अब अपनी बात है। क्या यह हालत हमारी नहीं है ? हम लोग अपने अहम् को पुष्ट करने को क्या-क्या नहीं करते। हमारा खाना-पीना, कपड़े पहिनना आदि सभी पर को दिखाने के लिये हैं। लोग बाहर जाते हैं, मेकअप करते हैं, कपड़ा बदलते हैं, मात्र दिखाने के लिये। फिर यह अपेक्षा करते हैं कि दूसरा हमसे पूछे कि—यह कहाँ से खरीदा, अच्छा है आदि। अगर कोई नहीं पूछता है तो मन कमजोर हो जाता है। अनेक प्रकार के दिखावे के उपाय करते हैं। इससे आत्मा का घात होता है, मायाचारी आती है। आत्मा का घात करके भी चौबीसों घंटे अपने अहम् को पुष्ट करना चाहते हैं। यह क्या अपने घर में आग लगाना नहीं है ? हमें समझना चाहिए कि इस अहम् की कीमत बहुत बड़ी देनी पड़ती है।

Scanned by CamScanner

भगवान महावीर की स्वतंत्रता की घोषणा

★ हरेक जीवात्मा शक्ति रूप परमात्मा है। वह अपनी शक्ति को क्रम से व्यक्त करता हुआ परमात्मा बन सकता है। यह महान स्वतंत्रता की घोषणा भगवान महावीर ने की है।

★ चारों गतियों के जीव जो मन सहित हैं, चाहे वह चण्डाल भी क्यों न हो, पशु-पक्षी भी क्यों न हो, सम्यक्दर्शन प्राप्त कर सकता है। सम्यक्-दर्शन प्राप्त करने का अर्थ मोक्षमार्गी हो सकता है।

★ धर्म की परिभाषा जो भगवान महावीर ने की है वह आज तक किसी ने नहीं की। उन्होनें यह नहीं कहा कि मुझे पूजना धर्म है अथवा यह क्रिया करना धर्म है, परन्तु उन्होंने कहा कि "वस्तु स्वभावो धम्मो" जो चैतन्य वस्तु का स्वभाव है, वही उसका धर्म है। अग्नि का स्वभाव उष्णता है, चीनी का मिट्ठापना, इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव है वीतरागता, वही जीव का धर्म है।

★ उन्होंने हमें णमोकार मंत्र दिया, जिसमें किसी व्यक्ति विशेष के नाम का स्मरण करने को नहीं कहा परन्तु यह कहा कि "जिसने विकारों का (राग-द्वोष) का नाश किया उसको नमस्कार है, जिसने स्वभाव को प्राप्त किया उसको नमस्कार है, जो विकारों के नाश करने में और स्वभाव (वीतरागता) को प्राप्त करने में लगे हैं, उन साधुओं को नमस्कार है। यह अद्भुत मंत्र है।

★ उन्होंने अहिंसा की परिभाषा बताई, जो सार्वभौम है, अर्थात् अप्रादुर्भाव-खुल रागादिनां भवत्यहिंसेति "अर्थात् अपने अन्दर रागादि भावों का न होना ही अहिंसा है, अर्थात् रागादि भावों का होना ही हिंसा है चाहे बाहर में जीव मरे या न मरे, ऐसी परिभाषा आज तक किसी ने नहीं बताई।

Scanned by CamScanner